वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

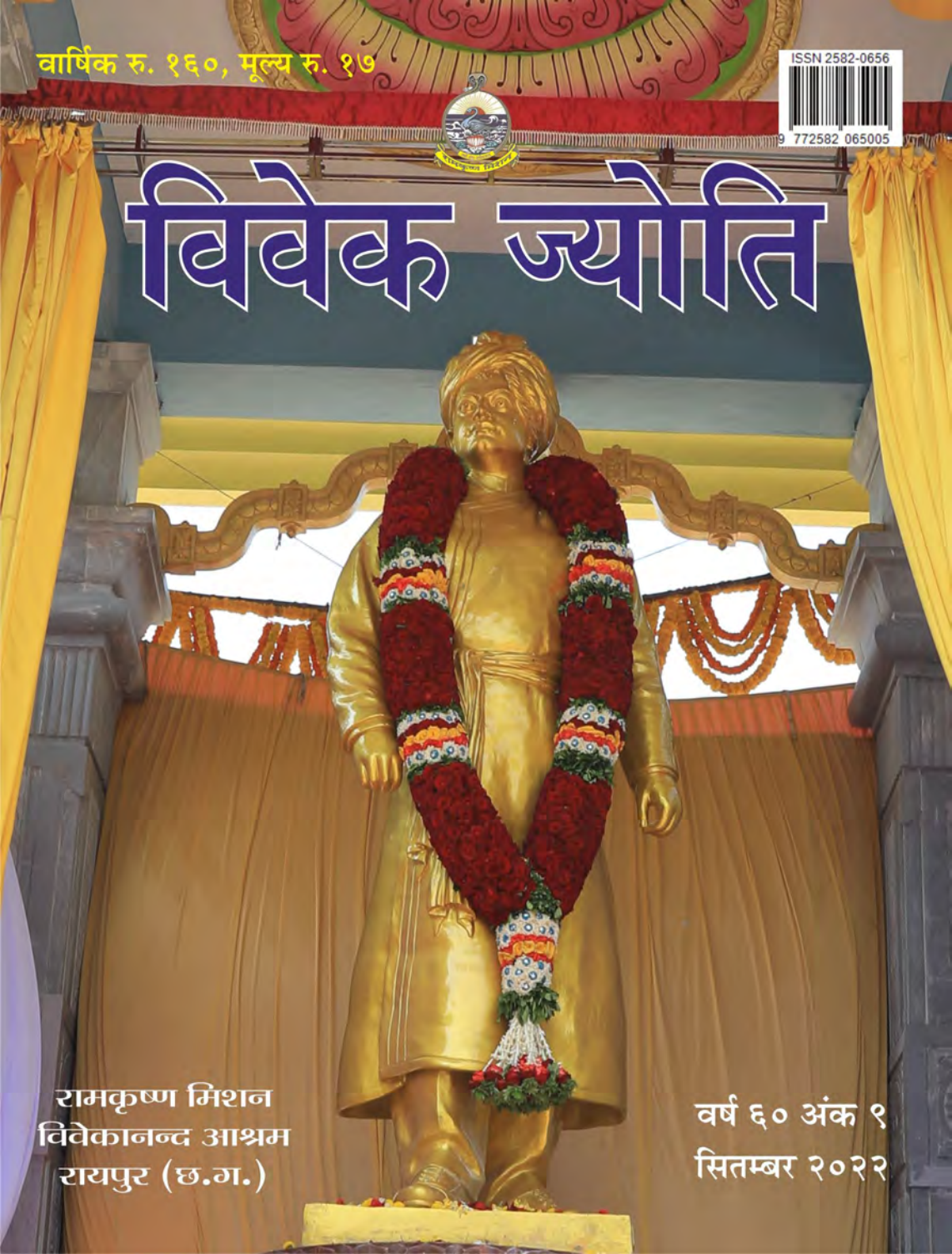

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६० अंक ९
सितम्बर २०२२

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६०

अंक ९

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक

स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक

स्वामी पद्माक्षानन्द

भाद्र, सम्वत् २०७९

सितम्बर २०२२

अनुक्रमणिका

* शिकागो के सम्बन्ध में विवेकानन्द के विचार ३८९
* श्रेय और प्रेय (स्वामी सत्यरूपानन्द) ३९३
* विश्व धर्ममहासभा में स्वामी विवेकानन्द की सहभागिता का प्रभाव (स्वामी आत्मस्थानन्द) ३९७
* (बच्चों का आंगन) वीर-बालक : छत्रसाल (स्वामी गुणदानन्द) ४००
* शिकागो विश्व धर्ममहासभा में पाश्चात्यों द्वारा भारतवर्ष का गौरवगान (लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला) ४०१
* (युवा प्रांगण) प्रसन्नता बाँटो, प्रसन्नता पाओ (सीताराम गुप्ता) ४०६
* वैराग्यमय भागवत (मौनी स्वामी रविपुरी जी) ४१२
* भारतीय और पाश्चात्य... मन का स्वरूप (मीनल जोशी) ४२२
* कृपा करे उद्धार (भानुदत्त त्रिपाठी) ४२४
* (कविता) जयतु विवेकानन्द विश्वगुरु (ओमप्रकाश वर्मा) ३९९
* (कविता) विवेकानन्द जी की शिक्षा (रामकुमार गौड़) ३९९
* (कविता) तुम छाये चारो ओर (मोहन सिंह मनराल) ३९९
* (कविता) मेरी माँ धरती की माटी (सविता दूबे) ४२१

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ३८९
पुरखों की थाती ३८९
सम्पादकीय ३९१
सारगाछी की स्मृतियाँ ३९५
गीतातत्त्व-चिन्तन ४०३
रामराज्य का स्वरूप ४०८
प्रश्नोपनिषद् ४११
आध्यात्मिक जिज्ञासा ४१७
श्रीरामकृष्ण-गीता ४२१
साधुओं के पावन प्रसंग ४२६
समाचार और सूचनाएँ ४२९

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)

ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***

आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	२२,०००/-

* कृपया सदस्यता राशि जमा करने के बाद इसकी सूचना हमें तुरन्त **फोन, मोबाईल, एस.एम.एस., व्हाट्सएप, ई-मेल** अथवा **स्कैन द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड नं.** के साथ भेजें।
* विवेक-ज्योति पत्रिका के सदस्या किसी भी माह से बन सकते हैं।
* पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूर्ण होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।
* विवेक-ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमियता के कारण कई बार पत्रिका सदस्यों को नहीं मिलती है, अत: पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे कई सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है। पत्रिका न मिलने की शिकायत माह के अंत में ही करें। अंक उपलब्ध होने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।
* सदस्यता, एजेन्सी, विज्ञापन एवं अन्य विषयों की जानकारी के लिए 'व्यस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

सितम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

१९	स्वामी अभेदानन्द
२५	स्वामी अद्वैतानन्द
७, २१	एकादशी

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से

अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

२६ अक्तूबर, २०२० को बैंगलुरू सिटी रेलवे स्टेशन, जो क्रान्तिवेरा संग्गोवैली रायन्ना के नाम से भी प्रसिद्ध है, में स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति का अनावरण श्रीसदानन्द गोडा, यूनियन मिनिस्टर के द्वारा नित्यस्थानन्द, स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी तत्त्वरूपानन्द इत्यादि संन्यासी तथा भक्तवृन्द की उपस्थिति में किया गया।

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६८७.	श्रीमती आशा अभिजीत नेमाड़े (महाराष्ट्र)	शासकीय प्राथमिक शाला, रामखेड़ा,पो. खट्टा, जि.-महासमुन्द
६८८.	श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	शास. उच्च प्राथमिक शाला रामखेड़ा,पो. खट्टा, जि.-महासमुन्द
६८९.	'' ''	गवर्मेंट हाई स्कूल खट्टा, पो. खट्टा, जि.- महासमुन्द (छ.ग.)
६९०.	'' ''	शास. उच्च प्राथमिक शाला खट्टा,पो. खट्टा, जि.- महासमुन्द
६९१.	'' ''	शास. प्राथमिक शाला खट्टा,पो. खट्टा, जि.- महासमुन्द (छ.ग.)
६९२.	'' ''	शास. माध्यमिक शाला खट्टा,पो.खट्टा, जि.- महासमुन्द (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६० **सितम्बर २०२२** **अंक ९**

स्वामी विवेकानन्दजयगानम्

जयतु जयतु शश्वद्वीरचूड़ामणिर्वै
सकल-मनुज-पंचक्लेशहारी विवेकः ।
विजित-निखिलमोहो ब्रह्मविज्ञाननिष्ठ-
स्त्रिभुवन-मणिदीपो भास्वरोऽसौ नरेन्द्रः ।।

– ब्रह्म-विज्ञाननिष्ठ, मोहविजेता, त्रिभुवन में जिनका प्रकाश मणि सदृश विस्तृत है, जो मानव के पंचक्लेशों के नाशक है और स्वमहिमा में भास्वर सदृश हैं, वे ही नरेन्द्र वीर-चूड़ामणि विवेकानन्द हैं, सदैव उनकी जय हो !

जयतु जयतु शश्वत्त्यागिचूडामणिर्वै
दलित-कनक-कामो गीतवादित्र-शूरः ।
अखिल सगुणशाली कोष-मुक्तासि-धारः
प्रतिभटकुलभीतिर्वज्रनिर्घोषकारी ।।

– कनक-काम के विजेता, त्यागी-चूड़ामणि, गीत-वाद्य में निपुण, सर्वगुणसम्पन्न, मुक्त खड्गधार सदृश तीक्ष्णमेधासम्पन्न, प्रतिस्पर्धियों को वज्रनाद सदृश शब्द से घोर त्रास देनेवाले उन नरेन्द्र स्वामी विवेकानन्द की जय हो !

पुरखों की थाती

कामीनाम् कामिनीनां च संगात् कामी भवेत् पुमान।
देहान्तरे ततः क्रोधी लोभी मोही च जायते।।७७२।।

– कामी नर-नारियों की संगति से व्यक्ति स्वयं भी कामी हो जाता है और लोभी-मोही तथा क्रोधी के रूप में अगला जन्म ग्रहण करता है।

कार्यमण्वपि काले तु कृतमेत्युपकारताम्।
महदप्युपकारोऽपि रिक्ततामेत्यकालतः।।७७३।।

– (किसी व्यक्ति के लिये) सही समय पर किया गया छोटा-सा कार्य भी बड़ा उपकारी होता है, परन्तु गलत समय पर किया गया महान् उपकार भी निष्फल हो जाता है।

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।।७७४।।
(महाभारत)

– काल या समय सभी प्राणियों का भक्षण कर लेता है, सभी जीवों का संहार कर देता है। सबके सो जाने पर भी काल जागता रहता है। उसके हाथों से बच पाना असम्भव है।

शिकागो धर्म-महासभा में स्वामीजी के विचार

अमेरिकावासी बहनो तथा भाइयो,

आपने जिस सौहार्द तथा स्नेह के साथ हम लोगों का स्वागत किया है, उसके लिये आभार प्रकट करने हेतु खड़े होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से परिपूर्ण हो रहा है। मैं आपको संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परम्परा की ओर से धन्यवाद देता हूँ, गौतम बुद्ध जिसके एक सदस्य थे; धर्मों की उस माता की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, बौद्ध तथा जैन धर्म जिसकी शाखाएँ मात्र हैं; और अन्ततः मैं सभी जातियों तथा मतों के कोटि-कोटि हिन्दुओं की ओर से भी आपको धन्यवाद देता हूँ। इस मंच पर उपस्थित उन कुछ वक्ताओं को भी मैं धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने आपको बताया है कि दूर-दूर के देशों से आये हुए ये लोग इस सभा में दृश्यमान सहिष्णुता के भाव को उन विभिन्न देशों को ले जायेंगे। इस विचार के लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का बोध करता हूँ, जिसने संसार को सहनशीलता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहनशीलता में ही विश्वास नहीं करते, अपितु सभी धर्मों को सच्चा मानते हैं। मुझे आपको यह बताते हुए गर्व का बोध होता है कि मेरे धर्म की पवित्र संस्कृत भाषा में exclusion शब्द का अनुवाद ही नहीं हो सकता। **मुझे एक ऐसे देश का निवासी होने का गर्व है, जिसने पृथ्वी के समस्त धर्मों तथा राष्ट्रों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है।** मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने सीने में यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट अंश को स्थान दिया था, जिन्होंने उसी वर्ष दक्षिण भारत में आकर शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मन्दिर रोमन अत्याचार से धराशायी हो गया था। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान् पारसी राष्ट्र के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब भी कर रहा है।

भाइयो, मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसे प्रत्येक हिन्दू बालक प्रतिदिन दुहाराता है। इस स्तोत्र की आवृत्ति मैं अपने बचपन से करता रहा हूँ और भारत के करोड़ों लोग इसकी प्रतिदिन आवृत्ति किया करते हैं। मुझे लगता है कि अब इसके भाव को कार्य रूप में परिणत करने का समय आ गया है – **रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम् ।**

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

– ''जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में जाकर तुम्हीं में मिल जाते हैं।''[२९]

इस धर्ममहासभा ने जगत् के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है : उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय विशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है, एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और उनका धर्म ही केवल जीवित रहेगा, तो उस पर **मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतला देता हूँ कि शीघ्र ही, सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा – 'संघर्ष नहीं – सहायता'; 'विनाश नहीं – ग्रहण;' 'मतभेद और कलह नहीं – समन्वय और शान्ति'।''**

सम्पादकीय

वर्तमान परिवेश में शिक्षक-प्रशिक्षण की प्रासंगिकता

मैगी गेलेघर ने कहा था, ''सभी कठिन कार्यों में शिक्षक बनना सबसे कठिन कार्य है।'' शिक्षक-वृत्ति एक व्यवसाय नहीं है, मात्र जीविका का साधन नहीं है। शिक्षक छात्रों को मात्र प्रारम्भिक पुस्तकीय ज्ञान देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेनेवाला व्यक्ति नहीं है। शिक्षक छात्र, अभिभावक और सरकार के बीच अपनी अस्मिता और स्वाभिमान से बचने के लिए संघर्षशील व्यक्ति मात्र नहीं है। शिक्षक केवल अधिकारों हेतु संघर्ष करनेवाला व्यक्ति नहीं है। तब शिक्षक क्या है?

शिक्षक समाज का दर्पण, समाज का, राष्ट्र का नव-निर्माता और समाजिक, राष्ट्रीय अभिनव क्रान्ति का जनक होता है। शिक्षक छात्र और अभिभावकों के बीच का वह सेतु है, जिसके आलम्बन से छात्र अपनी अज्ञानता और तमान्धता के सिन्धु को पार कर ज्ञान आलोक, ज्ञान-प्रकाश के क्षेत्र में, ज्ञानवारिधि में प्रवेश कर अपने तन-मन, बुद्धि को स्नान कराकर, परिष्कृत, परिमार्जित और संशोधित ब-ाता है। अपनी आत्मशक्ति को अभिव्यक्त करता है, आत्म-ज्योति से, ज्ञान-ज्योति से स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों के जीवन को भी प्रकाशित करता है। ब्रैड हेनरी कहते हैं, ''एक उत्कृष्ट शिक्षक छात्रों में आशा का जागरण और कल्पना को उभारता है।''

एक कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक समय का पालन करनेवाला सदा सजग वीर सैनिक होता है। वह स्वयं कर्त्तव्यनिष्ठ होकर छात्रों को कर्तव्यनिष्ठ होने की प्रेरणा देता है। शिक्षक कर्त्तव्यहीन होकर अधिकार के लिये संघर्ष नहीं करता, वह कर्तव्यनिष्ठ होकर छात्र और राष्ट्र के हित में अधिकारों हेतु संघर्ष करता है। शिक्षक छात्रों को यथार्थ मनुष्य, चरित्रवान, ज्ञानवान, बुद्धिमान, स्वावलम्बी, विनम्र, श्रद्धावान और वीर योद्धा बनाता है। वह छात्रों में नित्य अभिनव ऊर्जा, नव-शक्ति का संचार करता है। वह छात्रों को विकट परिस्थिति में हिमालय के समान धैर्यपूर्वक अचल दृढ़ रहकर उन पर विजय-प्राप्ति का अभिनव मूल-मन्त्र प्रदान करता है। वह छात्रों को सदा सभी परिस्थितियों में मुस्कुराते हुए अध्ययन करने, शैक्षिक गतिविधियों में सक्रिय रहने की प्रेरणा प्रदान करता है। शिक्षक छात्रों को उनके परिवार, समाज, राष्ट्र और वैश्विक उत्तरदायित्व से अवगत कराता है और उसके योग्य उनके चरित्र का निर्माण करता है। इतना महत्त्वपूर्ण दायित्व है शिक्षक का। इसीलिये जॉन स्ट्रेचन ने कहा था, ''किसी भी

स्कूल की सबसे बड़ी सम्पत्ति शिक्षक का व्यक्तित्व होता है।''

वर्तमान परिस्थितियों में जब इतनी बेरोजगारी है और नौकरी के लिए आपाधापी मची हुई, इस विषम परिवेश में क्या शिक्षक अपने इस दायित्व का बोध कर रहे हैं? यह मूल प्रश्न है? क्योंकि उत्तरदायित्व का बोध हुये बिना उस पर क्रियान्वयन कैसे होगा?

शिक्षक का उत्तरदायित्व क्या है?

शिक्षक का कर्तव्य क्या है? लाल बहादुर शास्त्रीजी ने कहा था, ''रचनात्मक अभिव्यक्ति और ज्ञान में प्रसन्नता जगाना शिक्षक की महान कला ज्ञान और रचनात्मक अभिव्यक्ति को जगाना है।'' शिक्षक का सामान्यत: उत्तरदायित्व छात्र-छात्राओं को, शिक्षार्थी को शिक्षा प्रदान करना है। कैसी शिक्षा प्रदान करना है? इस सम्बन्ध में मैं स्वामी विवेकानन्द द्वारा अभीप्सित शिक्षा के सारांश को यहाँ उद्धृत करता हूँ – ''मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णत्व की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है। जिस संयम के द्वारा इच्छाशक्ति का प्रवाह तथा विकास वश में लाया जाता है और फलदायी होता है, उपयोगी होता है, उसे शिक्षा कहते हैं। मेरी दृष्टि में शिक्षा का सार तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि मन की एकाग्रता प्राप्त करना है।

''जिस शिक्षा से हम अपना जीवन-निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र-गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा है। हमें ऐसी शिक्षा चाहिये, जिससे चरित्र-निर्माण हो, मानसिक शक्ति का विकास हो और हमारे देश के युवक आत्मनिर्भर हों, अपने पैरों पर खड़ा हो सकें।

''जो शिक्षा सामान्य व्यक्ति को जीवन-संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्र-बल, परोपकार की भावना और सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी क्या कोई शिक्षा है?''

इसमें १० बिन्दु हैं –

१. अन्तर्निहित पूर्णत्व की अभिव्यक्ति २. इच्छाशक्ति पर नियन्त्रण ३. मन की एकाग्रता ४. चरित्र-निर्माण, मनुष्य-निर्माण, ५. युवक आत्मनिर्भर हों ६. जीवन संग्राम में सक्षम ७. परोपकार की भावना हो ८. सिंह के समान साहस ९. चरित्र-बल १०. विचारों में सामंजस्य।

स्वामीजी ने शिक्षा के सार तत्त्व को स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष रखा है। इसमें शिक्षा के सभी तत्त्व समाहित हैं। शिक्षक को यह देखना है कि क्या वह ऐसी शिक्षा बच्चों को प्रदान कर रहा है या नहीं?

आज Value Education (मूल्य आधारित शिक्षा या आदर्श-शिक्षा) पर बहुत बल दिया जा रहा है। भारत सरकार और पाठ्यक्रम निर्माताओं को मेरा परामर्श है कि शिक्षा के पाठ्यक्रमों में इसे अभिन्न अंग के रूप में संयुक्त करना चाहिए।

शिक्षक केवल पाठ्यक्रम पूरा करके अधिकतम अंक दिलाने तक ही सीमित नहीं रह सकते। उन्हें उपरोक्त १० बिन्दुओं को ध्यान में रखकर बच्चों को शिक्षा देनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने धार्मिक शिक्षा देने की भी बात कही है – वे कहते हैं ''मैं धर्म को शिक्षा का अन्तरतम अभिन्न अंग समझता हूँ।''

धर्म मानव को सभ्य, संस्कारी, सुसंस्कृत बनाता है, इसलिए शिक्षा में धर्म के सहज बोधगम्य तत्त्वों को बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत करना भी शिक्षक का कर्तव्य है।

यदि अपने अध्ययन-काल में शिक्षक का ध्यान इन बिन्दुओं पर न गया हो, या ऐसी शिक्षा का संस्कार मन पर न पड़ा हो, तो शिक्षकों के लिए ऐसे शिक्षक-प्रशिक्षण शिविर का प्रयोजन है, जिसमें उपरोक्त बिन्दुओं पर विस्तृत चर्चा हो और उसे कैसे कक्षा में बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाये। ऐसी शिक्षा प्रदान करते समय आगत समस्याओं से कैसे निपटा जाये, इन व्यावहारिक विषयों पर चर्चा शिविर में होनी चाहिए।

शिक्षक-प्रशिक्षण शिविर में शिक्षा के आयाम और उसकी व्यावहारिक प्रस्तुति के विषयों में विस्तृत चर्चा की जानी चाहिए, जिससे विभिन्न परिवेश और क्षेत्रों से आये हुए शिक्षकों को नवालोक, अभिनव दिशा मिल सके। देश-काल-पात्र के अनुसार छात्रों की मनोदशा, उनका शैक्षिक स्तर परिवर्तित हो जाता है। आदिवासी क्षेत्रों के स्कूल से, सरकारी स्कूलों से और शहरी प्राइवेट स्कूलों से आनेवाले बच्चों का एक ही क्लास में रहते हुए भी उनकी शिक्षा, ज्ञान का स्तर भिन्न होता है। ये बच्चे जब एक साथ विश्वविद्यालय में आते हैं, तो सबको पाठ्यक्रम के विषयों को औसत स्तर पर कैसे समझाया जा सके, इस कठिनाई का भी शिक्षक को सामना करना पड़ता है, इसके व्यावहारिक पक्ष पर भी चर्चा होनी चाहिए।

शिक्षक छात्रों का पाठ्यक्रम पूरा करेंगे, उनकी परीक्षा लेंगे और उनमें नैतिक, चारित्रिक, मूल्योन्मुखी, आध्यात्मिक शिक्षा का भी समावेश करेंगे, जो सम्भवत: पाठ्यक्रम का प्रमुख अंग नहीं होता है। समयानुसार छात्रों को व्यायाम, विभिन्न प्रकार के खेल, योग और ध्यान का अभ्यास भी कराना होगा।

छात्र शिक्षकों के चरित्र को देखकर बहुत कुछ सीखते हैं। अत: शिक्षक को स्वयं चरित्रवान बनना होगा। बिल गेट्स ने कहा था, तकनीकी एक उपकरण है, किन्तु बच्चों को प्रेरित करने के लिये शिक्षक सबसे महत्त्वपूर्ण है। चरित्र केवल पुस्तक पढ़ने से नहीं बनता। पुस्तक से दिशा-निर्देश और प्रेरणा मिलती है। लेकिन नैतिक और आध्यात्मिक जीवन आचरण करने से बनता है। अत: शिक्षक को स्वयं का चरित्र-निर्माण पहले करना होगा।

हमारे आदर्श शिक्षक

शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, गौतम बुद्ध, स्वामी विवेकानन्द, महावीर आदि महान युगाचार्य थे, जिन्होंने समाज को सन्मार्ग पर प्रेरित किया। चाणक्य, आर्यभट्ट, विष्णु शर्मा, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, भारत के राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम आदि महान गौरवशाली शिक्षक हैं, जिन्होंने भारत को विश्व में सम्मान प्रदान कराया। इन लोगों ने अपने जीवन-कार्यों से और छात्रों की सहायता कर, उन्हें प्रेरित कर राष्ट्र-निर्माण में योगदान दिया।

इन सब आदर्शों और उत्तरदायित्वों का स्मरण कर पुन: नई ऊर्जा के साथ कर्मक्षेत्र में संलग्न होने हेतु ऐसे शिक्षक प्रशिक्षण-शिविरों की परम आवश्यकता है। ○○○

श्रेय और प्रेय

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)

मानव जीवन की उन्नति और विकास उसी दिन से प्रारम्भ होता है, जिस दिन से उसके अन्त:करण में चुनाव तथा निर्णय की चेतना और शक्ति का स्फुरण होता है। उसकी बुद्धि में शुभ और अशुभ, अच्छे और बुरे का ज्ञान प्रगट होता है। इस संधि-क्षण में जबकि उसकी बुद्धि शुभ और अशुभ को उसकी चेतना के सम्मुख प्रस्तुत करती है, मनुष्य को चुनाव करना पड़ता है, उसे निर्णय लेना पड़ता है। यह चुनाव और निर्णय ही मनुष्य के उत्कर्ष या विनाश का कारण होता है।

कठोपनिषद में यमराज नचिकेता से कहते हैं –

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।

(कठोपनिषद, १/२/२)

श्रेय और प्रेय दोनों ही मनुष्य के सामने आते हैं, बुद्धिमान मनुष्य उन दोनों पर विचार कर उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है। बुद्धिमान मनुष्य परमार्थ के साधन को भोग के साधन की अपेक्षा श्रेष्ठ समझकर उसका ही वरण करता है। मन्द-बुद्धि मनुष्य लौकिक लाभ-संग्रह की कामना से भोगों के साधन को ही वरण करता है।

उपनिषद के इस मंत्र में मनुष्य-जीवन के निर्णायक तत्त्व की ओर निर्देश किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति के सामने श्रेय – परमार्थ उपलब्धि तथा प्रेय – सांसारिक सुख-भोग के अवसर और प्रसंग उपस्थित होते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति को यह निर्णय स्वयं करना पड़ता है कि वह सांसारिक सुख भोगों के अवसर का चयन करे अथवा परमार्थ या आध्यात्मिक उपलब्धि का साधनमय अवसर का चयन करे।

प्रत्येक व्यक्ति को चुनाव की इस परीक्षा से अवश्य ही गुजरना पड़ता है। यह अलग बात है कि अधिकांश व्यक्ति श्रेय की ओर ध्यान न देकर इन्द्रियलोलुपता के कारण तत्काल प्रेय का वरण कर लेते हैं। किन्तु चाहे क्षण भर के लिये ही क्यों न हो, चुनाव का अवसर उपस्थित अवश्य ही होता है।

अधिकांश लोगों द्वारा प्रेय के वरण का कारण यह है कि वे लोग जीवन को गम्भीरता से लेते ही नहीं हैं। जीवन के प्रयोजन पर, जीवन की सार्थकता पर विचार ही नहीं करते हैं। इन्द्रियों की लोलुपता और मन के अनियन्त्रित आवेग के कारण आपातप्रिय इन्द्रिय-सुखों का वरण कर लेते हैं।

प्रेय चक्र

सुख-दुख के अनुभव मनुष्य के मन पर संस्कार डालते हैं। संस्कार अर्थात् छाप। हमारे अनुभव हमारे चित्त पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। ये संस्कार सुप्त स्मृति के रूप में हमारे चित्त में निहित होते हैं, बीज रूप में बने रहते हैं। इसीलिये अनुभूत सुख को पुन: प्राप्त करने की हमारी इच्छा बनी रहती है, केवल अवसर की प्रतीक्षा रहती है। अवसर मिलते ही मनुष्य पुन: उस सुख को भोगता है। पुन:-पुन: उसी सुख को भोगने के कारण भोग के संस्कार अत्यन्त दृढ़ हो जाते हैं। इन दृढ़ संस्कारों के कारण भोगेच्छा इतनी प्रबल हो जाती है कि मनुष्य उसका दास हो जाता है, इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। परिणाम रोग, शोक और विनाश ही होता है।

प्रेय अमंगलकारी है

प्रेय का वरण न केवल वरणकर्ता के जीवन को नष्ट कर देता है, अपितु उसके सम्पर्क में आनेवाले अन्य व्यक्तियों का भी अमंगल ही करता है। घर-घर में, जहाँ-जहाँ भी इर्ष्या-द्वेष, दुख-कष्ट, अमंगल, अकल्याण है, उसके मूल में प्रेय-प्रधान जीवन पद्धति ही है। उस घर या परिवार के अधिकांश लोगों ने अपने जीवन में प्रेय का ही वरण किया है।

धृतराष्ट्र, दुर्योधन आदि कौरवों का जीवन इसका ज्वलन्त प्रमाण है। प्रेय मनुष्य के विवेक को अन्धा कर देता है।

उसकी अन्तरात्मा को मार देता है। आये दिन ऐसे विवेकान्ध व्यक्तियों के दुष्कृत्यों के समाचार हमें पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने को मिलते रहते हैं।

प्रेय-चिन्ता की चिता

यमराज नचिकेता से कहते हैं – 'मन्द: योगक्षेमात् प्रेय: वृणीते' अविवेकी व्यक्ति सांसारिक योगक्षेम (लाभसंग्रह) की इच्छा से प्रेय का वरण करता है।

आचार्यगण हमें बताते हैं कि योग-क्षेम एक पारिभाषिक शब्द है। योग अर्थात् जो वस्तु प्राप्त नहीं है, उसे पाने की इच्छा। क्षेम अर्थात् जो वस्तु प्राप्त हो गई है, उसकी सुरक्षा की चिन्ता। योगक्षेम शब्द मानव-स्वभाव की एक बड़ी दुर्बलता का उद्घाटन करता है। यदि हम थोड़ा आत्म-निरीक्षण करें तथा उस पर थोड़ा विचार करें, तो हम पायेंगे कि जब-जब हमारे मन में प्रेय की वृत्ति या सांसारिक सुख-भोग की इच्छा प्रबल हो उठती है, तब-तब हमारे मन में 'योगक्षेम' की चिन्ता भी सजग और सक्रिय हो उठती है। एक बार योगक्षेम की चिन्ता सक्रिय हुई कि मन विक्षुब्ध तथा अशान्त हो उठता है। हम सभी जानते हैं कि अशान्त चित्त कभी भी सुखी नहीं रहता।

चिन्ता आज एक विश्वजनीन समस्या बन गई है। क्या धनवान, क्या दरिद्र सभी प्रेय-चक्र में पड़कर चिन्ता ग्रस्त हो गये हैं। चिन्ता के कारण मनुष्य अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों से भी ग्रस्त हो गया है।

आइये देखें चिन्ता की संरचना क्या है? चिन्ता के उपादान क्या हैं ?

चिन्ता का प्रथम उपादान है – अनिश्चय। अमुक कार्य होगा या नहीं, वस्तु, सम्पत्ति आदि मिलेगी या नहीं आदि।

चिन्ता का दूसरा उपादान है – आशंका। अनिश्चय जाते ही चिन्ता होने लगती है। अनिश्चय आशंका की जननी है।

चिन्ता का तीसरा उपादान है – भय। अशंका आते ही मन में भय उत्पन्न हो जाता है।

ये सभी कारण परस्पर अनुस्यूत हैं। एक-दूसरे में गुँथे हुए हैं। चिन्ताएँ अनेक हो सकती हैं तथा परिस्थिति, व्यक्ति आदि के कारण उसमें विभिन्न प्रकार के भेद भी दीख पड़ते हैं तथा कारणों की भी भिन्नता प्रतीत होती है। किन्तु उन सभी कारणों में उपरोक्त अनिश्चय, आशंका और भय के उपादान कर्म अधिक मात्रा में अवश्य होते हैं।

चिन्ता का एक बड़ा दोष यह है कि यह व्यक्ति को चिन्तन नहीं करने देती। सामयिक रूप से मनुष्य की निर्णय-क्षमता को आच्छादित कर देती है। चिन्ताग्रस्त व्यक्ति सही निर्णय नहीं ले पाता तथा सही निर्णय न ले पाने के कारण विपत्ति और दुख में पड़ जाता है।

चिन्ता कर्म–नाशिनी है – यदि व्यक्ति समय रहते सावधान होकर चिन्ता मुक्त नहीं हुआ, तो चिन्ता विषाद में परिणत हो जाती है और हम सभी जानते हैं कि विषाद व्यक्ति को अकर्मण्य बना देता है जैसाकि महाभारत युद्ध के प्रारम्भ में अर्जुन हो गया था। यह तो भगवान कृष्ण की कृपा थी कि उन्होंने उसे विषाद से उबारा और चिन्ता मुक्त किया।

चिन्ता सुख-नाशिनी है – चिन्ता व्यक्ति को उपलब्ध सुखों का भी भोग नहीं करने देती। समस्त सुख-सुविधाओं के रहते हुए भी चिन्तित व्यक्ति उनका उपभोग नहीं कर पाता। चिन्तित व्यक्ति सदैव दुखी होता है।

चिन्ता स्वास्थ्य-नाशिनी है – चिकित्सकों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि चिन्ता के कारण मनुष्य को अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग हो जाते हैं। वे रोग तभी मिटते हैं, जब व्यक्ति चिन्ताओं से मुक्त होता है।

चिन्ता निद्रा-घातिनी है – चिन्ताग्रस्त व्यक्ति कभी भी सुख की नींद नहीं सो सकता। चिन्ता के कारण उसका मन क्षुब्ध और अशान्त रहता है और हम सभी का अनुभव यही है कि जब हमारा मन क्षुब्ध और अशान्त रहता है, तब हम प्राय: सो नहीं पाते।

यदि समय पर चिन्ता को दूर करने का उपाय नहीं किया गया, तो यह निद्रा-घातिनी चिन्ता आत्मघातिनी बन जाती है।

चिन्ता मुक्ति के उपाय

हमने यह देखा कि चिन्ता किस प्रकार हमारे व्यक्तित्व को विनष्ट कर देती है। किन्तु हमारे ऋषियों और आचार्यों ने चिन्ता से मुक्त होने का राजमार्ग हमें दिखा दिया है। उनकी आज्ञा का पालन कर तथा उस मार्ग पर चल कर हम सभी प्रकार की चिन्ताओं से सर्वथा मुक्त हो सकते हैं।

सम्यक् चिन्तन – चिन्ता सम्यक् चिन्तन के द्वारा दूर की जा सकती है। चिन्तन के प्रमुख उपादान हैं, जिज्ञासा विचार और विवेक।

चिन्तन तब प्रारम्भ होता है जब व्यक्ति किसी भी समस्या,

शेष भाग पृष्ठ ३९८ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (११९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२०-०५-१९६४

महाराज – शास्त्र को जान लेने पर यह पता लगाया जा सकता है कि उन्नति हो रही है कि नहीं, ध्यान में मन लग रहा है कि नहीं, राग-द्वेष कम हुआ है कि नहीं? पहले सामान्य-सी बात पर उत्तेजित हो जाता था, अब उतना होता हूँ कि नहीं अथवा होने पर भी जल्दी ही उत्तेजना से विरत हो जाता हूँ कि नहीं? ऐसा विचार उत्पन्न करना कि इससे रंचमात्र भी लाभ नहीं हुआ, अपितु कुछ शक्ति नष्ट हो गई। पहले कोई मूल्यवान वस्तु खो जाने पर जिस प्रकार उद्विग्न हो उठता था, अब उस प्रकार होता हूँ कि नहीं? जब जैसा काम आ गया, वैसा कर दिया। आज मैदान में खोदना, कल मन्दिर, परसों चन्दा संग्रह, फिर व्याख्यान देना, सब उससे ही निर्विकार भाव से हो रहा है। किन्तु आजकल थोड़ी असुविधा हुई है, जिसके कहने से काम करोगे, उसमें साधुता का अभाव देखने पर उसे अपना हितैषी नहीं बोध होता तथा कार्य करने में भी संकोच होता है।

सौम्यानन्द एक जगह राहत कार्य कर रहा था। उसमें खूब मन लगा था, किन्तु अचानक मैंने पत्र भेज दिया कि तुम शीघ्र चले आओ। केवल यह देखने के लिए कि वह उस कार्य में कितना तल्लीन हुआ है। वह भी उसी तरह का था। पत्र पढ़कर तुरन्त चला आया। मैंने उसे क्यों बुलाया था, यह भी उसने नहीं पूछा। उस कार्य में यथेष्ट क्षति हुई, राहत-कार्य काफी बाधित हुआ। किन्तु हम लोगों का उद्देश्य राहत कार्य करना नहीं, अपितु मनुष्य-निर्माण करना है। सौम्यानन्द सचमुच मुझे अपना सुहृद समझता था। दूसरे प्रकार का भाव रहने पर सम्भवतः वह आता ही नहीं अथवा दो-चार दिन बाद आता अथवा उस कार्य को थोड़ा व्यवस्थित करके आता।

इस संसार में राहत-कार्य अवश्य ही अनन्त काल तक चलेगा, किन्तु एक मनुष्य-निर्माण होना, कितनी बड़ी बात है ! कार्य पर या फल पर उसकी मानों रंचमात्र भी आसक्ति न आए, क्या यह ध्यान नहीं रखना होगा?

शास्त्र का अर्थ पुस्तकीय विद्या नहीं, अपितु आध्यात्मिक उन्नति है – मन संसार से ऊपर उठ रहा है या नहीं? ध्यान-जप करने बैठा, मन में कार्य का विचार उठता है, तब मन को समझाना होगा कि अरे, कार्य तो दिन भर ही करता हूँ, अब थोड़े समय तक रामकृष्ण-चिन्तन करो ! इस तरह मन में व्यर्थ के चिन्तन को मत उठने देना। बुद्धि से विचार करो कि किस वस्तु का भोग करोगे और कौन वस्तु तुम्हें स्थायी सुख देगी? बुद्धि के आश्वस्त हो जाने से ही सब हो गया। इसी का नाम ज्ञान है, यही ज्ञान होना यथेष्ट है।

२२-०५-१९६४

महाराज – यदि मैं पुनः शरीर-धारण करके चापरास (ईश्वरीय आदेश) पाऊँ, तो चिल्लाकर यह कहते हुए घूमूँगा कि शरीर की रंचमात्र शक्ति भी नष्ट नहीं हो। सामान्य अनावश्यक खींच-तान से भी बहुत-सी शक्ति का क्षय होता है। पन्द्रह वर्ष की आयु तक तो उछल-कूद अवश्य करोगे ही। तदुपरान्त कड़े अनुशासन में रहना। केवल व्यायाम और कुछ निर्दिष्ट खेल-कूद करोगे। अर्थात् प्राण के बदले प्राण-संग्रह करना। ठीक जैसे किसी व्यवसाय में एक हजार रुपए लगाकर सौ रुपए लाभ।

०९-०७-१९६४

महाराज – रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, ये सभी साधु के लिये संकटकारक हैं। रूप तो भयावह है, रस सर्वनाश का हेतु है, गन्ध और शब्द उतने भयावह नहीं हैं। स्पर्श की तो कोई बात ही नहीं। किन्तु साधु-देह और मातृ-देह में ईश्वर का प्रकाश होता है।

हमने पहले ही यह उल्लेख किया है कि जो भी कारण रहा हो, वर्ष १९६४ के मध्य में महाराज के शरीर में कुछ सुधार दिखा। सेवकगण महाराज के शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार से अतीव प्रसन्न थे। महाराज के जड़ पिण्डवत् शरीर में मानो प्राण-संचार हो गया ! उसके ही परिणामस्वरूप महाराज द्वारा कथित बातों को लिपिबद्ध करना सम्भव हुआ था। महाराज के निष्क्रिय दोनों हाथों को यदि थोड़ा सक्रिय किया जा सके, इसके लिए सेवकगण कितना प्रयत्नशील थे ! महाराज भी दो-तीन वर्ष के शिशु की तरह सेवकों को उस खेल में सहयोग देते। इसी प्रकार का एक चित्र हम दिनांक १३-८-१९६४ को लिखित पवित्र चक्रवर्ती के एक पत्र में पाते हैं। हम इस पत्र के इस अंशविशेष को उद्धृत करते हैं –

श्रीरामकृष्ण

वाराणसी

१३-०८-१९६४

पूजनीय,

पूज्यपाद प्रेमेश महाराज लगभग पूर्ववत हैं। इसीलिये मैं प्राय: कहता हूँ कि आजकल पूजनीय महाराज सनातन के कामकाज में कुछ मदद कर रहे हैं। जैसे समझ लीजिए कि अदरक पीसकर देने पर वे उसकी गोली बना देते हैं, जिससे मुख की शुद्धि होगी। बिस्तर के पास बैठकर दोनों पैरों को नीचे स्थित स्टूल पर रखकर गोद में थाली को रखकर गोली बनाना, सोचकर देखिए ! फिर जैसे वे बैठे-बैठे क्रमश: एक नया पैसा का एक सौ डाक टिकट काटकर उसे जल में भिगाकर सनातन के हाथ में दे रहे हैं और सनातन उसे पोस्टकार्ड पर चिपका रहे हैं। तीसरी बात यह कि छोटे-छोटे तकिए के खोलों को वे स्वयं उसमें पहनाते हैं। आजकल वे मकरध्वज का चूर्ण स्वयं बना लेते हैं, कभी लेटकर, तो कभी बैठकर। शहद और चावल के धोवन के साथ २-४ दिन से वे इसका सेवन कर रहे हैं।

इधर उन्हें दो बार स्नान करवाया जाता है। उनका भोजन प्राय: पूर्ववत् ही है। किन्तु अच्छा सेब नहीं मिलने के कारण कुछ दिनों से सेब खिलाना बन्द है और इससे भूख आदि स्वाभाविक रहने पर अब सेब बन्द ही रहेगा। भात खाने की मात्रा थोड़ी बढ़ी है। सुबह-शाम मुड़ी का चूरन भी खा रहे हैं।

अन्य सब पूर्ववत है। सुबह ५ से ६ बजे तक और शाम को ५-२५ या ५-३० बजे से ६-३० या ७-४५ बजे तक पेराम्बुलेटर पर भ्रमण चल रहा है। यहाँ दो-एक दिन खूब गर्मी पड़ने के बाद अभी थोड़ा ठंडा मौसम है।

इस समय दोपहर के बारह बज चुके हैं। पूज्यपाद महाराज अपने कक्ष में पेराम्बुलेटर पर बैठे हैं। उनके पास ब्रह्मचारी सनातन महाराज और सुनील महाराज बैठे हैं। पूज्यपाद महाराज के सम्बन्ध में आपको और क्या जानना है? खुजली के बारे में कुछ बताने की आवश्यकता नहीं है। यही पूज्यपाद महाराज को सर्वाधिक कष्ट देती है।

मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिएगा।

इति
आप सभी का
पवित्र

पत्र का शेषांश –

महाराज का समाचार सुनकर बहुत आनन्द होगा। किन्तु जिनको लेकर हमलोग आनन्द कर रहे हैं, वे शरीर की दृष्टि से आनन्द मिलने पर बड़े ही नाराज होते हैं। फिर भी, हृदय का कष्ट नहीं होने पर और भूख का भाव विशेष रहने पर हम लोग मानो खूब बोझरहित रहकर स्वच्छन्द भाव से हँस-खेल सकते हैं।

पवित्र दादा भ्रमण के समय गीता और 'संन्यासी का गीत' का पाठ कर रहे हैं। इस समय हमलोग इनके नित्य सहचर हैं तथा साधन और विघ्न, आत्मसमर्पणयोग, संन्यास और साधन, स्वरूप विज्ञान आदि के पाठ में निरत हैं। आपका भीतरी (साधना सम्बन्धी) कर्म-यज्ञ और बाहरी (व्यावहारिक) कर्म-यज्ञ कैसा चल रहा है? अपने भीतर और सामने स्थित नारायणों के भीतर कोशचतुष्टय का विश्लेषण किस प्रकार चल रहा है? यही सब समाचार महाराज जानना चाहते हैं।

प्रतिप्रणाम
सनातन

२२-०८-१९६४

प्रात:काल ५ बजे महाराज भ्रमण करने निकले हैं। प्रकृति की अद्भुत शान्त शोभा है। धीरे-धीरे सूर्योदय हो रहा है। नीलाकाश में जगह-जगह काले बादल हैं। पूर्वदिशा में सुसज्जित रूप से अरुणोदय हो रहा है। चारों ओर कहीं

शेष भाग पृष्ठ ३९८ पर

विश्व धर्ममहासभा में स्वामी विवेकानन्द की सहभागिता का प्रभाव

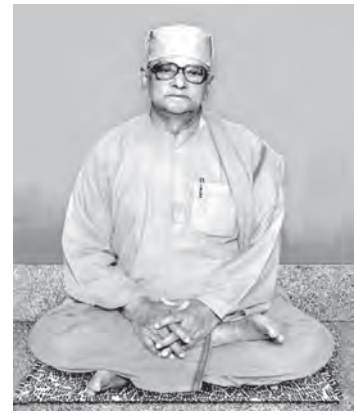

स्वामी आत्मस्थानन्द

रामकृष्ण संघ के १५वें संघाध्यक्ष

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द

विश्व-धर्ममहासभा का शब्द सुनते ही हमारे मन में युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द का यह वाक्य स्मरण होता है, 'मैं समाज पर बम जैसा फूट पड़ूँगा।' सच में, ११ सितम्बर, १८९३ को शिकागो में वैसा ही हुआ। स्वामीजी पाश्चात्य समाज पर बम जैसा ही फूट पड़े। यह सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक बम था। पाश्चात्य समाज पर इस बम के फूटने का नकारात्मक और सकारात्मक अर्थात् ध्वंसात्मक तथा रचनात्मक; दोनों प्रभाव हुए। एक ओर इस सांस्कृतिक बम ने पाश्चात्य विचार और संस्कृति को हिला कर रख दिया, इसने पाश्चात्य मनुष्यों की श्रेष्ठता की माँग को, पाश्चात्यवासियों की धार्मिक कट्टरता, उनके तामसिक परमेश्वर पर विश्वास और मूल पाप के बीभत्स विचार को नष्ट कर दिया। दूसरी ओर, रचनात्मक पक्ष के रूप में देखें, तो स्वामीजी का धर्ममहासभा में उपस्थित रहना उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्वामीजी ने पाश्चात्य मानव को एक नये संसार का दृष्टिकोण दिया, आत्मा की महिमा की झलक दी, मनुष्य को धर्म तथा आध्यात्मिक खोज के लिए, जीवन के उच्चतर लक्ष्य तथा उच्चतर आनन्द के लिए एक नयी प्रेरणा दी। उन्होंने परस्पर स्वीकृति के आधार पर धार्मिक समन्वय का एक नया विचार दिया। स्वामीजी ने पाश्चात्य मनुष्यों के समक्ष भारत की प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति के महत्त्व को भी प्रकाशित किया।

स्वामीजी का विश्वधर्म-महासभा में उपस्थित रहना भारतीय समाज के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है।

जब हम १८९३, शिकागो के धर्ममहासभा के बारे में विचार करते हैं, तो स्वामीजी का एक अन्य विचार हमारे मन में आता है। स्वामीजी ने कहा था कि धर्ममहासभा का आयोजन उनके लिए ही हुआ था। यह बहुत महत्त्वपूर्ण वाक्य है। क्या स्वामीजी का यह तात्पर्य था कि विश्व मानवता के लिए नये संदेश के प्रचार-प्रसार हेतु धर्ममहासभा एक विश्वमंच था। स्वामीजी केवल एक यन्त्र-मात्र थे, यह उनके गुरु की वाणी थी, श्रीरामकृष्ण ने उनको माध्यम बनाकर प्रचार किया और जैसा कि रोमाँ रोलाँ ने कहा है, भारतीय लोगों के दो शताब्दियों के आध्यात्मिक जीवन को श्रीरामकृष्ण ने प्रस्तुत किया। श्रीरामकृष्ण ने न केवल प्राचीन ज्ञान को पुन: जागृत किया, बल्कि अपनी ओर से उसमें कुछ और भी जोड़ दिया। इस धर्ममहासभा को विश्व-मानवता के लिए सार्वभौमिक सन्देश के प्रचार हेतु अस्तित्व में लाया गया था तथा इस महान घटना को अभी मुख्य रूप से स्मरण किया जा रहा है।

स्वामीजी के सन्देश का मुख्य लक्षण यह है कि वे सन्देश शाश्वत हैं। स्वामीजी ने जो सन्देश विश्व को दिया, वह मूल्य और शक्ति में शाश्वत हैं।

स्वामीजी का सन्देश

स्वामीजी ने स्वयं ही अपने जीवन के उद्देश्य के बारे में कई बार बताया था। हमें उनके उस उद्देश्य के मुख्य कार्य को, स्वामीजी के सन्देश के केन्द्रीय विषय को, उस उद्देश्य को जिसके लिए नारायण नर के रूप में अवतीर्ण हुए, को समझना होगा। स्वामीजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनके सन्देश ने मानव ज्ञान तथा उद्यम के बहुत विस्तृत श्रेत्र को आच्छादित किया। यहाँ पर उसमें से केवल एक या दो प्रमुख अवधारणा को उद्धृत किया जा सकता है। मनुष्य की दिव्यता में विश्वास स्वामीजी के सन्देश का केन्द्रीय विषय था। जैसा कि स्वामीजी ने कहा था, ''प्रत्येक व्यक्ति अव्यक्त ब्रह्म है।

हमारा कार्य उसे अपने भीतर व्यक्त करना है।'' स्वामीजी का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को उसके अन्तर्निहित दिव्यता को बताना तथा उसमें विश्वास कराना था। अमरता, स्वतन्त्रता, आनन्द ये मानव-आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। स्वामीजी के अनुसार धर्म इस अन्तर्निहित दिव्यता की अभिव्यक्ति है। सभी जीवन नीचे स्तर के सत्य से उँचे स्तर के सत्य की ओर प्रगति करने का प्रयास है, न कि असत्य से सत्य की ओर। वैदिक ऋषि ने घोषणा करते हुए कहा, ''शृण्वन्तो विश्वे अमृतस्य पुत्रा: !'' शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं और मानव इस वाणी को भूल गया था। स्वामीजी ने उस वाणी को ध्वनित तथा प्रतिध्वनित किया।

जीवन के चार पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का समान रूप से महत्त्व है। स्वामीजी ने कहा, ''वह जहाँ खड़ा है, वहीं उसकी सहायता करो।'' इसीलिए स्वामीजी के भाषणों एवं पत्रों में तथा उनके द्वारा स्थापित रामकृष्ण मठ तथा मिशन के विभिन्न सेवा-कार्यों के पीछे यही भावना थी। लेकिन सभी का उद्देश्य 'मनुष्य में पहले से विद्यमान दिव्यता को प्रकट करना' की ओर ही है।

मानव जाति की एकता स्वामीजी का एक अन्य बहुत महत्त्वपूर्ण सन्देश है। पुरुष या स्त्री, जीवन के सभी क्षेत्र में वे जहाँ भी हैं अपने प्रजाति, पंथ तथा जाति के भेद के बावजूद भी तत्त्वत: एक हैं। जहाँ पर मनुष्य भेद देखता है, वहाँ पर स्वामीजी एकता देखते थे। वर्तमान विश्व मानवता की एकता के आदर्श को अनुभव करने में संघर्षरत है।

स्वामी विवेकानन्द के शाश्वत सन्देश बहुमूल्य, बहुआयामी हैं। उनका जीवन तथा सन्देश मानव को असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से ज्योति की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की यात्रा में बहुत सहायक सिद्ध होगा। ○○○

पृष्ठ ३९४ का शेष भाग

अथवा चिन्ता के कारण पर विचार करना प्रारम्भ करता है। उसके कारणों को जानने के लिए प्रश्न करता है कि इस समस्या का कारण क्या है? किस कारण मैं चिन्तित हूँ। चिन्ता के कारण को ढूँढ़ कर व्यक्ति उस पर विचार करता है कि मैं किस प्रकार इस समस्या का समाधान कर सकता हूँ? विवेकपूर्वक शुभ-अशुभ का विचार कर वह यह स्पष्ट देख पाता है कि मैं किस प्रकार इस चिन्ता से मुक्त हो सकता हूँ। जिज्ञासा विवेक और विचार से प्राप्त तथ्यों के आधार पर जब व्यक्ति दृढ़ संकल्प होकर चिन्ता के कारणों को त्यागकर सम्यक् आचरण करने लगता है, तब वह चिन्ताओं से मुक्त होकर अपने जीवन की समस्याओं का समाधान कर पाता है। ○○○

पृष्ठ ३९६ का शेष भाग

भी कोई नहीं है।

महाराज – यही अपूर्व शोभा बचपन में घर (पूर्वाश्रम) में देखता था। विस्तृत घर था, सामने पूर्व और दक्षिण में बड़ा एवं खुला तालाब था, पास में कोई मकान नहीं। इसीलिए तो सोचता हूँ, गोविन्दजी (कुलदेवता) को कहाँ रखेंगे? ऐसे विस्तृत जगह से लाकर कहाँ रखेंगे? गोविन्दजी को हमेशा खुली जगह में रहने का अभ्यास है।

दोपहर के समय राजयोग पर नोट्स का पाठ हुआ। अपरिग्रह के अभाव से ही देश की ऐसी दुर्दशा है, यह बात महाराज ने बहुत जोर देकर कहा। पवित्र दादा ने एक सज्जन को मिठाई खिलाने को कहा था, किन्तु बाद में उनके साथ भेंट कर पाना सम्भव नहीं हुआ। महाराज ने कहा – उस पैसे को दुखी-पीड़ित नारायणों में बाँट देने से ही उपयुक्त कार्य होगा।

दोपहर में गीता के अठारहवें अध्याय का पाठ हो रहा है। पास में पवित्र दादा हैं। महाराज का शरीर थोड़ा अच्छा चल रहा है। पेट और हृदय (छाती) की समस्या कम है। एक सुकुमार, कोमल आयु के बच्चे की तरह बिस्तर पर पड़े हैं। दोनों पैरों को ऊँचा करके, छोटे बच्चे की तरह खाने का आग्रह कर रहे हैं। महाराज कह रहे हैं, 'आज शहद थोड़ा अधिक देना। शाम को थोड़ी खीर खाऊँगा, क्योंकि उदय महाराज दोपहर में प्रसादी खीर रखकर गए हैं।'' **(क्रमश:)**

भजन एवं कविता

विवेकानन्द की शिक्षा

रामकुमार गौड़, वाराणसी

उठो देश के अमर सपूतों, भारत नव निर्माण करो ।
वीर विवेकानन्द कह रहे, उठो, उठो अब नहीं डरो ।।
धन-अर्जन की होड़ मची है, पर तुम विचलित मत होना।
बल, विवेक, निर्मल चरित्र ही, है हीरा-मोती-सोना।।
जीवन का उद्देश्य कभी तुम, नहीं भूलना हे भाई ।
अपना दिव्य स्वरूप प्रकट, करना ही सच्ची चतुराई ।।
स्वामीजी बस यही सिखाते, सदा बनो पर-उपकारी ।
सबमें ईश्वर-भाव रखो, शिव ज्ञान से सेवाव्रत धारी ।।
वीर विवेकानन्द सभी से, यही कह रहे, उठो, बढ़ो ।
तुम जड़वत, पशुतुल्य नहीं, तुम उठकर उन्नति शिखर चढ़ो।।
रामकृष्ण के परम शिष्य का यह उद्‌बोधन सुनो, सुनो ।
बल, निर्भयता, सच्चरित्र ही उत्तम धन, तुम इसे चुनो ।।
बल, विवेक का आश्रय लेकर, सब बन्धन परिहार करो ।
नर-नारायण-सेवाव्रत, लेकर तुम आत्मोद्धार करो ।।
तुम ईश्वर को कहाँ खोजते, वे सबमें ही विराज रहे ।
सबके प्रति सद्‌भाव, प्रेम, सेवा से ही वे तुष्ट रहे ।।
स्वामीजी की देह सबल, फिर बुद्धि, हृदय, मन अविकारी।
तुम मन-वचन-कर्म से निश्छल, बनो देशहित-व्रतधारी ।।
अपना दिव्य स्वरूप भुलाकर, जड़वत्, पशुवत मत होना।
मानव का निर्माण करे जो, उस शिक्षा को मत खोना ।।
सदा-सर्वदा अपने में, फिर ईश्वर में विश्वास करो ।
तुम सच्चे स्वधर्म-पथ पर, चलकर पूरी अभिलाष करो ।।
विकट प्रलोभन और विफलता या असत्य से नहीं डरो ।
उठकर आगे बढ़ते जाओ, उठने में विश्वास करो ।।
यही सार सच्ची शिक्षा का, इसमें ही सुख-शान्ति बसे ।
तुम इसको ही अपनाकर, डूबो सत्-चित्-आनन्द रसे ।।

जयतु विवेकानन्द विश्वगुरु

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

जयतु विवेकानन्द विश्वगुरु, सदा निरत तुम जनकल्यान ।
दिव्य लोक से तुम आये प्रभु, सुनकर रामकृष्ण आह्वान ।।
ज्योतिपुंज तुम ध्यानपरायण, सदा समर्पित सत-सन्धान ।
आत्मज्ञान का अलख जगाने, आये हो तुम पुरुष महान ।।
परम तत्त्व में सदा लीन तुम, हरते हो सबका अज्ञान ।
घनीभूत आनन्दभाव हो, सकल विश्व के तुम अभिमान ।।
नित्य मुक्त तुम सदा पूज्य हो, योगिश्रेष्ठ तुम विवेकवान ।
भोगवाद के दैत्य-दलन को, आये तुम प्रभु कृपानिधान ।।
विश्ववीर हे शुचिता-स्वामी, करते तुम नित ज्ञान-वितान ।
करुणाविगलित हृदयवान तुम, धर्मतत्त्व के चिर आख्यान।।
तुम ही हो प्रभु मुक्तिप्रदाता, सेवाव्रत के तुम अभिज्ञान ।
दुखितों के सब दुख हरने को, आये प्रभु तुम महिमावान ।।
तुम ही धर्म-तत्त्व के रक्षक, विषय-भोग के तुम अवसान ।
शिवस्वरूप तुम शिवमतिदायक, दे दो मुझे कृपा का दान ।।

तुम छाए चारों ओर

मोहन सिंह मनराल

तुम छाए चारों ओर, रामकृष्ण छाए चारों ओर ।
मोह निशा अब बीत चली है, हो रही निर्मल भोर ।।
रामकृष्ण छाए चारों और ।।१।।
नील-गगन सर ऊपर फैला, नभचर करते शोर ।
सूरज चंदा नेत्र तुम्हारे, देखें सबकी ओर ।।२।।
धरती-पर्वत सागर तारे, कहीं ओर न छोर ।
घर-घर पूजा होय तुम्हारी, तुम सबके चितचोर ।।३।।
पंक्ति बनाकर उड़ते पंछी, देख घटा घनघोर ।
सकल जीव हैं अंश तुम्हारे, थामे हो जीवन की डोर ।।४।।
सहज-सुगम संतों की वाणी, जीवन पथ है कठोर ।
दुख भंजन है नाम तुम्हारा, पाया सुख का छोर ।।५।।
नाम तुम्हारा काटे बंधन, जपो कामना छोड़।
नाम के आगे कलि में तुम्हारे, चले न यम का जोर ।।६।।

वीर-बालक : छत्रसाल

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक बार की बात है बुंदेलखण्ड (झाँसी का क्षेत्र जो मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश का सीमावर्ती क्षेत्र है) का दस-बारह वर्ष का एक शूरवीर बुंदेली बालक अपने कुछ वीर मित्रों के साथ अपनी आराध्या देवी 'माँ विन्ध्यवासिनी' के मन्दिर में उत्सव देखने गया। सभी वीर-बालकों की कमर में छोटी-सी तलवार लटक रही थी, मानो सभी युद्ध क्षेत्र में जा रहे हों। बाल-वीर देवी की पूजा के लिए फूल लाने जा रहे थे, तभी उन्होंने दौड़ते हुए घोड़ों की आवाज सुनी और उन्हें चारों ओर घोड़ों पर शस्त्रसहित घुड़सवार दिखाई दिये।

प्रमुख घुड़सवार ने बालकों से पूछा कि यहाँ देवी का मन्दिर कहाँ है? बालकों में से एक शूर बालक ने पूछा – 'क्या आप यहाँ देवी माँ की पूजा करने आये हैं?' घुड़सवार ने कहा – 'हम यहाँ मूर्ति तोड़ने आये हैं।' यह सुनते ही वीर-बालक ने आग बबूला होकर कहा – 'हम आराध्या देवी माँ का अपमान करनेवालों को जीवित नहीं छोड़ते।' यह कहकर उस शूरवीर ने म्यान से अपनी खड्ग निकाली और प्रमुख घुड़सवार का सिर काटकर धड़ से अलग कर दिया। अन्य वीर बालकों ने भी अपनी-अपनी तलवारों से घुड़सवारों पर धावा बोल दिया। एक वीर बालक ने सभी लोगों को घटना के बारे में सचेत किया। लोग यह सुनकर जब दौड़ते हुए जा रहे थे, तभी रास्ते में उन्हें एक बालक शान्त चित्त से आता हुआ दिखाई दिया जिसके एक हाथ में फूल और दूसरे हाथ में रक्त से लथ-पथ खड्ग था। उस शूरवीर बालक के साहस तथा पराक्रम को देखकर सभी लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। लोग मानने लगे कि देश और धर्म की रक्षा के लिए हमें एक महापराक्रमी, साहसी, सुयोग्य तथा निडर नेतृत्व मिला है। सभी लोग वीर बालक को धन्य-धन्य कहने लगे। वीर बालक के पिता अपने पुत्र का पराक्रम नहीं देख सके, क्योंकि वे वहाँ नहीं थे। गाँववालों ने बालक के पिता को सारी घटना का विवरण दिया। पिता ने जैसे ही वीर पुत्र के पराक्रम के बारे में सुना उनके हृदय में पुत्र-प्रेम उमड़ आया और वीर पुत्र को अपनी छाती से लगाकर, भुजाओं से लपेटकर सहजभाव से कहा – **'होनहार बीरवान के होत चिकने पात'।** अर्थात् जो होनहार होते हैं, उनकी प्रतिभा के लक्षण बचपन से ही दिखाई देते हैं। इस बाल शूरवीर बालक का नाम था छत्रसाल।

कालजयी योद्धा छत्रसाल बुंदेला

छत्रसाल का जन्म बुंदेला वंश में ४ मई, १६४९ में कचर कचनई (तत्कालीन मुगल शासन), जिला टीकमगढ़ वर्तमान मध्यप्रदेश में हुआ था। उनके पिता का नाम चम्पतराय तथा माता का नाम लाल कुँवर था। छत्रसाल तब लगभग १२ वर्ष की आयु के थे, जब उसके माता-पिता का देहान्त हो गया। छत्रसाल अपने मामा के गाँव गये और वहाँ मित्रों का एक दल बनाकर युद्ध कला तथा मातृभूमि की रक्षा के लिये स्वयं को तैयार करने लगे।

छत्रसाल छत्रपति शिवाजी महाराज से मिलना चाहते थे। छत्रसाल ने महाराजा जयसिंह की सेना में १८ महीने बिताने पर रणनीति तथा कूटनीति के बारे में अच्छे अनुभव प्राप्त किये तथा मुगल सेना की रचना, कार्यशैली एवं कमजोर स्थिति का भी अनुभव प्राप्त किया। छत्रसाल भील के वेश में रायगढ़ के मार्ग पर चलने लगे और शिवाजी की राजधानी में प्रविष्ट हुये। शिवाजी से वार्तालाप करने के बाद छत्रसाल ने लोगसंग्रह की, संगठन के कार्यशैली की तथा भावनात्मक

शेष भाग पृष्ठ ४२० पर

शिकागो विश्व धर्म-सम्मेलन में पाश्चात्यों द्वारा भारतवर्ष का गौरवगान

लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला

स्वामी आत्मानन्द ने मुझे सन् १९७२ में विश्वधर्म-सम्मेलन पर लुइस बर्क की पुस्तक दी थी। उसके पहले रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का कोई अध्ययन मैंने नहीं किया था। वह पुस्तक मुझे बहुत रुचिकर लगी। उसे पढ़ने के बाद मेरी यह धारणा बनी कि विश्व धर्म-सम्मेलन ईसाई धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित करने के एकमात्र उद्देश्य के लिए आयोजित किया गया था। जब मैं गहराई में गया, तो मेरी यह धारणा बदल गई।

धर्म-सम्मेलन बहुत बड़े विश्व-मेले का एक अंग मात्र था। अमेरिका के उत्साह की कल्पना इससे की जा सकती है कि इस मेले के लिए न्यूयॉर्क, वाशिंगटन, सेंट लुइस और शिकागो में होड़ लग गई थी। अमेरिकी सीनेट को इसके निर्णय के लिये वोट डलवाने पड़े और अन्त में शिकागो बहुमत से जीत गया। सरकार ने सीनेट में विशेष कानून बनाकर इस मेले के आयोजन की अनुमति दी। इस मेले के विस्तार का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसे पूरा देखने के लिए १५० मील पैदल चलना पड़ता था तथा तीन सप्ताह का समय देना पड़ता था।

हिन्दू संन्यासी स्वामी विवेकानन्द को इसी धर्म-सम्मेलन ने विश्वविख्यात बना दिया। उनके धर्म-सम्मेलन में आने के पीछे दैवी प्रेरणा थी। विश्व धर्म-सम्मेलन में जाने के लिये जब वे आबू से मुम्बई आए, तो उन्हें विदा देने स्वामी तुरीयानन्द उनके साथ आए थे। स्वामी तुरीयानन्द ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि स्वामीजी ने उनसे कहा कि ''हरि भाई, यह धर्म-सम्मेलन मेरे लिए हो रहा है और बहुत शीघ्र इस सत्य को तुम सब समझ लोगे।'' सन् १८९० में विश्व धर्म-सम्मेलन के आयोजन की पहली औपचारिक कमेटी की बैठक अमेरिका में हो रही थी। उसी वर्ष गाजीपुर में विदेशी लोग स्वामीजी को विदेश जाकर हिन्दू धर्म के प्रचार के लिए उत्साहित कर रहे थे। यह सब दैवी विधान के अनुकूल

हो रहा था। अमेरिका पहुँचकर स्वामीजी के प्रारम्भिक दिन अत्यन्त निराशा के रहे। वेंकुवर उतरने के दो-तीन दिनों में ही उनकी भेंट सेनबोर्न केट्स से हुई। उस समय स्वामीजी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि वे उनके यहाँ अतिथि बनकर रहेंगे। स्वामीजी का अमेरिकी जनता से पहला परिचय उस विदुषी के माध्यम से ही हुआ।

विश्व धर्म-सम्मेलन सन् १८९३ की गौरवशाली उपलिब्ध है। सत्रह दिनों तक पाँच से सात हजार श्रोताओं को साधारणतया शुष्क समझे जानेवाले धर्म-प्रवचनों से आकर्षित रखना कोई साधारण उपलब्धि नहीं है।

इस पृष्ठभूमि में मुझे धर्म-सम्मेलन के कार्यालय द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित धर्म-सम्मेलन की लगभग १३०० पृष्ठों की विस्तृत रिपोर्ट पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने भिन्न-भिन्न वक्ताओं के भाषण पढ़े, तो मुझे आश्चर्य हुआ कि अनेक ईसाई वक्ताओं ने भारत के प्रति अद्भुत श्रद्धा अर्पित की है। प्रथम दिन ही श्री बरोज साहब ने अपने स्वागत-भाषण में भारत का उल्लेख करते हुए कहा – 'धर्मों की जननी भारतवर्ष', 'भारत की पवित्र नदियों का स्वच्छ जल', 'राजकुमार सिद्धार्थ के बौद्ध धर्म के शिष्यों, जो एशिया को प्रकाश प्रदान करते हैं, का स्वागत।''

वाराणसी में अगला धर्म-सम्मेलन

ईसाई श्रोताओं ने प्रथम दिन ही स्वामी विवेकानन्द के भाषण का जोरदार स्वागत किया। तीसरे दिन लेक फॉरेस्ट विश्वविद्यालय के प्रो. रॉबर्ट्स ने अपने भाषण में कहा कि ''ईश्वर की शक्ति का दर्शन सारी प्रकृति में होता है, पर हमारे जो मित्र चीन व भारत से आए हैं, वे इस विषय में हमसे अधिक गहराई में गए हैं।'' पाँचवे दिन रूस के सर्ज वोलिवुंस्की ने भारत की भूरि-भूरि प्रशंसा अपने भाषण में की। दसवें दिन हेनरी एम फिल्ड का भाषण तथा तेरहवें दिन जॉर्ज हुड का भाषण भी अत्यन्त उदार रहा। डाना बोर्डमेन ने पूर्व के धर्माचार्यों की प्रशंसा की। **धर्म-सम्मेलन के व्यवस्थापक जेन्किन लॉयड्स ने अगला धर्म-सम्मेलन भारत के पुण्य-स्थल वाराणसी में होने की कामना की।** आदरणीय धर्माचार्य चेपिन ने प्राच्य देशों के प्रति श्रद्धा निवेदित करते हुए कहा, ''पूर्व से आए बुद्धिमान सज्जनवृन्द के चरणों के समीप बैठकर हमने शिक्षा ली है।'' ऐसे श्रद्धापूर्ण उद्गार ईसाइयों द्वारा धर्म सम्मेलन में दिए गए।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि धर्म-सम्मेलन में कुछ कट्टर ईसाइयों ने हिन्दू विरोधी भाषण भी दिए। तीसरे दिन हिन्दू-विरोधी कटु भाषण धर्माचार्य स्लेटर का और चौथे दिन श्री जोसेफ कूक का हुआ। छठे दिन चार्ल्स ब्रिग्स ने कहा कि ईसाई धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। दसवें दिन मोहम्मद वेब का इस्लाम पर जब भाषण हुआ, तो श्रोताओं में बहुत आक्रोश छा गया। बारहवें दिन डॉ. फिलिप्स कफ, डॉ. आर.डी. ह्यूम और बेरूत के धर्माचार्य जॉर्ज ई. पोस्ट का मुसलमानों के विरुद्ध भाषण हुआ। उन्होंने अध्याय ३३ की आयतें सुनाई – ''इस्लाम धर्म के लिए तुम्हारे विरोध करनेवालों से युद्ध करो। जहाँ भी वे मिलें, उनकी हत्या कर दो। मूर्ति पूजा मानव-हत्या से भी अधिक भयानक है... उनका नाश कर दो, ताकि मूर्तिपूजा का लेशमात्र भी न रह जाए।'' तेरहवें दिन एरेन एम. पावेल ने नारियों व लड़कियों की गुलामी के व्यापार के लिए ईसाइयों की आलोचना की। यहूदी आचार्य जोसेफ सिल्वरमैन ने यहूदियों के विरुद्ध मिथ्या प्रचार करने के लिये ईसाइयों की कटु आलोचना की। ग्रीक धर्माचार्य फीयांबोलिस ने मुसलमानों के विरुद्ध कटु भाषण दिया। जांटे द्वारा ईसाइयों पर कटु प्रहार इसलिए किए गए कि वे यहूदियों के विरुद्ध दुष्प्रचार कर रहे हैं। तेरहवें दिन डॉ. मार्लिन ने भी ईसाइयों पर प्रहार किया कि चीनियों के प्रति हम अच्छा व्यवहार नहीं कर रहे हैं। चौदहवें दिन जॉर्ज पेंटाकोस्ट ने हिन्दुओं पर कटु प्रहार किया। अन्य धर्मावलम्बियों ने ईसाइयों पर भी कटु प्रहार किए। पन्द्रहवें दिन पश्चिमी चीन के टीयंटशीन ने ईसाई धर्म की भिन्न-भिन्न शाखाओं की एकता की आवश्यकता पर जोर दिया। उसी दिन फिलिप शॉप ने भी ईसाई धर्म की भिन्न-भिन्न शाखाओं की एकता पर जोर दिया।

यह मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि हमारे यहाँ धारणा है कि हिन्दू धर्म में इतने छोटे-छोटे सम्प्रदाय चल रहे हैं, पर यह केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं होता है, ईसाइयों में भी बहुत सारे सम्प्रदाय हैं, जिसका संकेत इन भाषणों से मिलता है। श्री वीरचन्द गाँधी ने ईसाइयों द्वारा धर्मान्तरण पर कटु प्रहार किया। सोलहवें दिन जापानी विद्वान किसीमोटो व स्याम देश से आए आचार्य एस. मेक्सफेरलेंड व कोंस्टेनटिनोपल के आचार्य कॉस्टेटियन द्वारा भी ईसाई धर्म की प्रशंसा की गई।

शेष भाग पृष्ठ ४१० पर

गीतातत्त्व-चिन्तन (५)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भगवान का दिव्य रूप : ईश्वर ही सृष्टि, स्थिति और संहार के कारक

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे,
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ–
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।।१५।।

अर्जुन उवाच (अर्जुन बोला) देव (हे देव!) तव देहे (मैं आपकी देह में) सर्वान् देवान् तथा भूतविशेषसंघान् (समस्त देवताओं को तथा अनेक भूत समुदायों को) कमलासनस्थम् ब्रह्माणम् (कमलासन पर विराजित ब्रह्मा को) ईशम् च सर्वान् ऋषीन् (महादेव को और समस्त ऋषियों) दिव्यान् च उरगान् पश्यामि (तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ)।

''हे देव! मैं आपकी देह में समस्त देवताओं को तथा अनेक भूत समुदायों को, कमल के आसन पर विराजित ब्रह्मा को, महादेव को और समस्त ऋषियों तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ।''

हे प्रभो ! आपकी इस दिव्य देह में मैं समस्त देवताओं को देख रहा हूँ। प्रश्न उठता है कि भगवान के शरीर में देवताओं को देखकर अर्जुन ने उन्हें कैसे पहचान लिया? टीकाकारों का कहना है कि अर्जुन को देवताओं के बारे में सैद्धान्तिक जानकारी तो थी, जैसे किसी पुराण आदि को पढ़ने के बाद हमको हो जाती है। इसके अतिरिक्त भगवान के दिये हुए दिव्य चक्षुओं के कारण भी अर्जुन में इतनी क्षमता आ गई थी कि उन सब देवताओं को देखकर वह अलग-अलग पहचान सके। और **भूतविशेषसंघान्** – चर-अचर, स्थावर-जंगम, जो यह जगत् है और उसकी जितनी भी विविधता है, उन सबके समूह को मैं आपके शरीर में विद्यमान देखता हूँ।

रामकृष्ण परमहंस ने अपने एक शिष्य के प्रश्न के उत्तर में बताया था कि जब ईश्वर के दर्शन होते हैं, तब उनकी पहचान-प्रतीति स्वत: ही हो जाती है। उनके ईश्वर होने में कोई सन्देह नहीं रहता, भ्रम नहीं रहता। देवताओं के प्रति अर्जुन की प्रतीति बिल्कुल सही है। उन्हें वह अलग-अलग से अच्छी तरह पहचानता है। ब्रह्मा और ईश के नाम अर्जुन ने अलग-अलग क्यों लिए? ब्रह्मा भगवान के उस रूप-विशेष को कहते हैं, जिसके द्वारा वे सृष्टि का सृजन करते हैं। जिसने साक्षात् परब्रह्म परमात्मा को देख लिया, उसने तो फिर ब्रह्मा, शिव और विष्णु सबको एक साथ देख ही लिया। कृष्ण तो विष्णु के ही अवतार हैं। इसलिए टीकाकारों के अनुसार यहाँ पर ईश कहने से तात्पर्य है महेश से। भगवान के सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाले तीनों रूपों को अर्जुन देख लेता है। पद्मपुराण में पृथ्वी को कमल की संज्ञा दी गई है। इसलिए **कमलासनस्थम्** से ब्रह्माजी के पृथ्वी पर विराजमान होने की कल्पना भी की जा सकती है। अथवा पुराणों की कथा के अनुसार विष्णुजी की नाभि से निकले हुए कमल पर बैठे देखा होगा। अर्जुन को भगवान के साकार रूप का दर्शन हो रहा है। वह द्रष्टा है और उस दृश्य को देखनेवाला यही समझता है कि वह भगवान से पृथक् है। अर्जुन द्रष्टा बनकर भगवान के रूप के दृश्य को देख रहा है। जब वह समझ रहा है कि उस एक ही शरीर में सभी

समाए हुए हैं, तब यह भी जान गया होगा कि वह स्वयं भी भगवान के उस शरीर में ही है। कुरुक्षेत्र के सारे योद्धा भी वहीं भगवान के शरीर में दिखाई दिए होंगे। जिन ऋषियों से अर्जुन का परिचय था, वे भी उसे भगवान के शरीर में बैठे दिखाई दिए। सब दिव्य सर्प भी जिन्हें वह जानता था, जैसे-वासुकिनाग, शेषनाग आदि, वे भी अर्जुन ने देखे।

भगवान का तेजोमय अनन्त रूप

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।।१६।।
किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता
द्दीप्तानलार्कद्युमिमप्रमेयम्।।१७।।

विश्वेश्वर (हे भगवन् !) त्वाम् अनेकबाहूदर वक्त्रनेत्रम् (आपको अनेक बाहुओं, पेट, मुख और नेत्रोंवाला) सर्वतः अनन्तरूपम् पश्यामि (सब ओर से अनन्त रूपोंवाला देखता हूँ) विश्वरूप (हे विश्वरूप !) तव न अन्तम् पश्यामि (आपके न अन्त को देखता हूँ) न मध्यम् पुनः न आदिम् (न मध्य को और न आदि को) त्वाम् (आपको) किरीटिनम् गदिनम् च चक्रिणम् (मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त) सर्वतः दीप्तिमन्तम् तेजोराशिम् (सब ओर से प्रकाशमान तेजपुंज) दीप्तानलार्कद्युतिम् (दीप्त अग्नि और सूर्य के समान) दुर्निरीक्ष्यम् समन्तात् (कठिनाई से दिखने वाले) अप्रमेयम् पश्यामि (और सब ओर से विचित्र देखता हूँ)।''

''हे भगवन् ! आपको अनेक बाहुओं, पेट, मुख, नेत्रोंवाला, सब ओर से अनन्त रूपोंवाला देखता हूँ। हे विश्वरूप ! आपके न अन्त को देखता हूँ, न मध्य को और न आदि को।''

''आपको मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त, सब ओर से प्रकाशमान तेजपुंज, दीप्त अग्नि और सूर्य के समान कठिनाई से दिखनेवाले और सब ओर से विचित्र देखता हूँ।''

अर्जुन भगवान से कह रहा है – आपके दिव्य शरीर में मैं देखता हूँ, आपकी अनेक भुजाएँ हैं, अनन्त उदर, अनन्त नेत्र, अनन्त मुख हैं, कहाँ तक गिनाऊँ। हे विश्वेश्वर ! आप विश्वरूप हैं। आपके चारों ओर मैं केवल अनन्तरूप ही देख रहा हूँ। आपका न मैं आदि देख रहा हूँ, न मध्य और न ही अन्त। जिस तरह हम कहीं से भी देखें, किसी नदी का आदि, मध्य और अन्त एक साथ नहीं देख पाते। आदि, मध्य और अन्त होते तो हैं ही, पर उसके विस्तार के कारण सब एक साथ नहीं दीखता। उसी प्रकार यहाँ अर्जुन भगवान के आदि, मध्य और अन्त को देख नहीं पा रहा है। अर्थात् उनके रूप की सीमा को नाप नहीं पा रहा है। अर्जुन के पास दिव्यचक्षु हैं, जिनकी सहायता से वह सब कुछ देख सकने में सक्षम तो है, पर भगवान का आदि, अन्त कुछ हो तब तो ! वे अनन्तरूप हैं। बड़े विस्तारवाले हैं। उनका आदि या अन्त है ही नहीं। वे असीम हैं। आदि और अन्त को जो नहीं जानता, वह मध्य को कैसे जानता है? बीच को तो हम तभी जान सकते हैं, जब दोनों छोरों को भी जानते हों। इसीलिए अर्जुन कहता है – मैं आपको सब ओर अनन्त रूप से विस्तृत देखता हूँ। अर्जुन को जो दर्शन हो रहा है, उसको प्रकट करते हुए वह कहता है – आपके सब सिरों पर मुकुट हैं। हाथों में गदा और चक्र हैं। आपका रूप अत्यन्त प्रज्वलित है। सर्वत्र अपनी प्रभा विकीर्ण करके आप स्थित हैं, जिसको सामान्य आँखों से देख सकना दुर्लभ है, आपका वही रूप मैं देख रहा हूँ। अनन्त सूर्यों के एक साथ उगने से जैसा प्रकाश होगा, वैसे ही आपकी तेजोशक्ति है। हे प्रभो ! किसी में भी इतनी शक्ति नहीं है कि आपको ज्ञान की सीमा में बाँध सके। आपकी कोई उपमा हो नहीं सकती। फिर भी मैं उपमा देने का प्रयास करता हूँ।

कोई कहे कि अर्जुन पहले ही मान लेता कि भगवान अप्रमेय हैं, तो इतनी सारी व्याख्या ही नहीं करनी पड़ती। पर बात तो यह है कि जिस समय भक्त अपने भगवान के रूप को पहली बार देखता है, तब उसे वह इतना अद्‌भुत दिखाई देता है और उस समय उसके मन में जो भावना प्रकट होती है, तब सारा तर्क धरा रह जाता है और उसकी भावना इसी प्रकार अजस्र धाराओं में बह निकलती है। शबरी ने, केवट ने जब राम के पहली बार दर्शन किये थे, तब वे भी इसी तरह प्रेम में पगी अटपटी वाणी ही बोल पाए थे। भक्त अपने भगवान को देखने के बाद अपने आवेश को रोक नहीं पाता। उस समय उसकी भावना को बस ग्रहण ही किया जा सकता है। उसके वचनों को तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। कोई महानपुरुष भी, जिस पर

हमारी बहुत श्रद्धा हो, अचानक हमारे घर में आ जाए, तब हमारी स्थिति ऐसी ही हो जाती है कि हम समझ नहीं पाते कि क्या बोलें और क्या करें ! उनका आना तो बहुत अच्छा लग रहा है, पर भक्ति के आवेश में स्पष्टता से कुछ भी व्यक्त नहीं कर पाते।

ईश्वर के कतिपय विशेषणों का वास्तविक अर्थ

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।।१८।।

त्वम् अक्षरम् (आप ही अक्षर हैं) परमम् वेदितव्यम् (जानने योग्य परम तत्त्व हैं) त्वम् अस्य विश्वस्य (आप ही इस जगत के) परम् निधानम् (परम आश्रय हैं) त्वम् शाश्वतधर्मगोप्ता (आप शाश्वत धर्म के रक्षक हैं) त्वम् अव्ययः सनातनः पुरुषः (आप अविनाशी सनातन पुरुष हैं) मतः मे (यह मेरा मत है)।

''आप ही अक्षर हैं, जानने योग्य परम तत्त्व हैं, आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप शाश्वत धर्म के रक्षक हैं, आप अविनाशी सनातन पुरुष हैं, यह मेरा मत है।''

अर्जुन के अप्रमेय कह देने का यह अर्थ नहीं है कि भगवान को देखा नहीं जा सकता। अर्जुन तो उनके स्वरूप के विषय में अपना ठीक मन्तव्य भी बताता है कि भले ही आप अप्रमेय पुरुष हैं, इन्द्रियों की सीमा में किसी भी प्रकार समाते नहीं हैं, परन्तु फिर भी प्रभो ! आप ही अक्षय पुरुष हैं। संसार में एकमात्र आप ही जानने योग्य हैं। आप ही यथार्थ ज्ञान के विषय हैं। आप ही इस विश्व के परम आश्रय हैं। आश्रय उस पात्र को कहते हैं, जिसमें कुछ रखा जाए और भगवान वह पात्र हैं, जिसमें सम्पूर्ण विश्व रखा हुआ है। आप अव्यय हैं, अविनाशी हैं। अव्यय का अर्थ है जिसका कभी विनाश नहीं होता। आप शाश्वत धर्म के रक्षक हैं। आप ही सनातन पुरुष हैं।

अर्जुन ने एक बार भगवान के लिए अक्षर कहा और फिर कहा अविनाशी। तो दोनों में अन्तर क्या हुआ? इस सूक्ष्म अन्तर को समझने के लिए उदाहरणार्थ – मान लीजिए मेरी एक उँगली कट गई। ऊँगली कटने के बाद भी मैं तो आत्मानन्द ही रहा। शरीर का वैसा का वैसा बना रहना अव्यय कहलाता है। अर्थात् किसी अंग का विनाश न हो। यदि किसी का कोई अंग कट भी गया, पर वह व्यक्ति बना ही हुआ है, तो कहेंगे अक्षर। जैसेकि हिमालय पर्वत को लें। हिमालय पर्वत अव्यय की श्रेणी में नहीं आएगा, वह अक्षर की श्रेणी में आएगा क्योंकि वर्षों से वह जैसा था, वैसा ही खड़ा दिखाई देता है। पर वास्तव में वह वैसा का वैसा है नहीं। जाने कितने खण्ड अब तक उसमें से तोड़कर निकाले जा चुके होंगे। अक्षर उसे कहते हैं, जिसके अंग में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो। अव्यय वह है, जिसके किसी भी अंग में कोई भी विकार नहीं है। वह जैसा पहले था, वैसा ही अब भी है। अर्जुन ने भगवान को जो अक्षर बताया, वह इसीलिए कि भगवान के शरीर में सारा जगत् भी है और जगत् तो नाश को प्राप्त होता है। जीव हैं, वृक्ष हैं, ये एक-न-एक दिन मृत्यु को प्राप्त होते हैं और जला दिए जाते हैं। तब फिर भगवान का विराट् शरीर खण्डित तो हो ही गया। भगवान के अंगों का इस प्रकार भले ही विनाश होता रहे, पर समष्टि रूप में उन्हें समझें तो, उनके शरीर का तो विनाश होता नहीं। तब उन्हें अक्षर कहना ही तो ठीक था। अब उन्हें अव्यय बताने की आवश्यकता क्यों हुई? पहले जो व्याख्या बताई कि जीव, वृक्ष आदि की मृत्यु हो जाने से उनको जला दिये जाने पर भगवान का अंग खण्डित हो गया, तो फिर जलकर वह गया कहाँ? तो कहा कि पञ्चमहाभूतों में विलीन हो गया। ये पञ्चभूत भी तो भगवान के शरीर से बाहर नहीं हैं। इन पञ्चमहाभूतों को सूक्ष्म तन्मात्राओं से आया हुआ मानें, तो वे भी तो भगवान में ही रहती हैं। तब भगवान का अंगभंग तो हुआ नहीं। इसीलिए उन्हें कहा अव्यय। समुद्र के किनारे खड़े होकर देखें, तो समुद्र में फेन उठता है और थोड़ी देर बाद वह फेन जाकर सागर में ही विलीन हो जाता है। अब यह फेन का विलीन हो जाना, नष्ट हो जाना, सागर के कलेवर का विनाश तो नहीं माना जा सकता। समुद्र के पानी का कोई रंग नहीं है और उसका फेन दूध के समान सफेद दिखाई देता है। फेन के नष्ट हो जाने से सागर का नाश इसीलिए नहीं हुआ कि फेन जो पहले अलग-सा दिखाई देता था और बाद में जाकर सागर में मिल गया। उसी के जैसा हो गया। सागर का ही अंग था। सागर में ही मिल गया। यही बात भगवान पर भी लागू होती है। मरकर हम कहीं और तो चले नहीं

शेष भाग पृष्ठ ४०७ पर

प्रसन्नता बाँटो, प्रसन्नता पाओ

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

ये बात लगभग सिद्ध हो चुकी है कि यदि हम मन के अन्तस्तल से कोई वस्तु चाहते हैं, तो वह अवश्य मिल जाती है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या इच्छित वस्तुएँ अथवा धन-सम्पत्ति पाने से हमें पूर्ण या प्राप्ति के अनुपात में ही सही प्रसन्नता मिलती है? जब हम इन्हें पा लेते हैं, तो प्रसन्नता का मिलना स्वाभाविक है, लेकिन वह प्रसन्नता वास्तव में वस्तु-सापेक्ष अथवा स्थिति-सापेक्ष होती है। इच्छित वस्तु पाने का सुख होता है, लेकिन वह सुख सीमित होता है, लेकिन असीम प्रसन्नता के लिए और भी कई बातें होती हैं। एक सामान्य-सा उदाहरण है। मान लीजिए हमें जोर की भूख लगी है और हमारी तीव्र इच्छा के कारण हमें तत्काल इच्छित भोजन मिल जाता है। ऐसा होने पर व्यक्ति का प्रसन्न होना स्वाभाविक है।

लेकिन जब हम वह भोजन ग्रहण करने लगते हैं, तो हम पाते हैं कि हमारे पास एक अन्य व्यक्ति भी है, जो भूखा बैठा है। यदि हम उस भूखे व्यक्ति की उपेक्षा करके स्वयं भोजन कर लेते हैं, तो भोजन से हम तृप्त तो हो जाते हैं, लेकिन उतनी प्रसन्नता नहीं मिलती, जितनी मिलनी चाहिए। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जब तक सम्पूर्ण समाज प्रसन्न नहीं होगा, तब तक एक व्यक्ति अथवा परिवार भी पूर्ण रूप से प्रसन्न नहीं हो सकता। यदि समाज के बहुत-से लोगों के दुखी अथवा अभावग्रस्त रहने पर कोई स्वयं पूर्ण रूप से प्रसन्न रहने का दावा करे, तो उसके दावे पर नहीं, तो उसकी मानवता अवश्य सन्देहास्पद है। जब हम अपने सम्पूर्ण परिवेश की प्रसन्नता के प्रति सचेत और प्रयासरत रहते हैं, तभी हम स्वयं अधिकाधिक प्रसन्नचित रह सकते हैं।

इसे एक अन्य घटना के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं। एक महिला ने अपने शहर से दूसरे शहर में जाने के लिए हवाई जहाज में आगे की सबसे महँगी सीट बुक करवाई, ताकि रात की यात्रा में उसे कोई कठिनाई न हो। वह मन ही मन यह भी चाह रही थी कि आगे की बाकी सीटें खाली रहें, जिससे वह रात भर पसर के आराम से सो सके और पूरी नींद ले सके। पहले भी एक हवाई यात्रा के दौरान उसकी ऐसी ही इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। उसे पूरी आशा थी कि आज भी ऐसा ही होगा। उसकी तीव्र इच्छा से अथवा संयोग से कहिए उस दिन भी उसके पास वाली सीटों पर कोई नहीं आया। वह बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रही थी। उसकी अतिशय प्रसन्नता का एक दूसरा कारण था, उसकी मन की विशिष्ट इच्छा का पूर्ण होना। उसकी उत्कट इच्छा के कारण ही ये स्थिति उत्पन्न हुई थी।

तभी उसने सुना कि एक वृद्ध महिला यात्री एयर होस्टेस से पूछ रही थी कि क्या वह आगे की पंक्ति में खाली सीट पर बैठ सकती है, क्योंकि पीछे की सीट पर उसे बड़ी घुटन का अनुभव होता है और बैठने में कठिनाई होती है। जब एयर होस्टेस ने उससे कहा कि वह आगे की सीट पर अवश्य बैठ सकती है, पर इसके लिए कुछ अधिक पैसे देने होंगे, तो वह वृद्ध महिला अधिक पैसे देने में असमर्थता व्यक्त करते हुए दुखी मन से पीछे चली गई। यह देखकर सबसे आगे की सीट पर आराम से अकेली बैठी हुई महिला को उस वृद्ध महिला की स्थिति पर दुख होने लगा तथा

उसकी मनचाही स्थिति की प्रसन्नता कम होने लगी। जब एयर स्टेस उसके पास से गुजरी, तो उसने एयर होस्टेस से उस वृद्ध महिला को अपने साथ वाली सीट देने और उसका अतिरिक्त भुगतान स्वयं करने को कहा।

साथ ही उसने यह भी निवेदन किया कि उस वृद्ध महिला को भुगतान के विषय में भी कुछ न बताए, अपितु उसे यह कहे कि आप स्वयं हवाई कम्पनी की ओर से उसे ये ऑफर दे रही हैं। यह सुनकर एयर होस्टेस मुस्कराई और कहा कि वह सारी व्यवस्था कर देगी। थोड़ी देर बाद ही वृद्ध महिला वहाँ आगे की सीट पर आ गई। आगे की उस आरामदायक सीट पर बैठने के बाद उस वृद्ध महिला के चेहरे पर परम सन्तुष्टि एवं प्रसन्नता का भाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था। उसकी प्रसन्नता को देखकर उसके लिए ये सारी व्यवस्था करनेवाली महिला को भी वर्णनातीत प्रसन्नता हो रही थी। अब वे आपस में गपशप कर रही थीं। उसे इतनी अधिक खुशी मिल रही थी, जो उसकी उस निर्विघ्न नींद से कहीं बहुत अधिक थी, जिसे उसने महँगे टिकट व अपनी उत्कट इच्छा द्वारा निर्मित किया था।

पूरी यात्रा के समय वह महिला आनन्द के सागर में डुबकियाँ लगाती रही। वह यात्रा उसके जीवन की यादगार बन गयी। यात्रा-समाप्ति के करीब जब महिला ने भुगतान के लिये अपना क्रेडिट कार्ड उस एयर होस्टेस की ओर बढ़ाया, तो उसने क्रेडिट कार्ड लेने की बजाय उससे अत्यन्त आदरपूर्वक व धीमे स्वर में कहा – वह अपने पूरे स्टाफ की ओर से उसका धन्यवाद करना चाहती है। उसने ये भी कहा कि उन्होंने विमान में जो चीजें आज तक देखी थीं, यह उनमें सर्वश्रेष्ठ थी और वे सब इससे प्रेरित हो गए थे। एयर होस्टेस ने न केवल वृद्ध महिला की सीट बदलने के पैसे नहीं लिए, अपितु उस महिला के भोजन और पेय पदार्थों के पैसे भी नहीं लिए।

हवाई जहाज का पूरा स्टॉफ उस महिला के व्यवहार के लिए कृतज्ञ लग रहा था। ये स्थिति उस महिला के लिये अब तक की सभी प्रसन्नताओं से बढ़कर थी। ऐसे में कौन गौरवान्वित, प्रेमपूर्ण व कृतज्ञ अनुभव नहीं करेगा? मात्र एक अच्छा काम करने के विचार से उस महिला के सामने खुशियों का ढेर लग गया था। प्रसन्नता की बात तो यह है कि इसके लिए वह जो देना चाहती थी, वह भी उसे नहीं देना पड़ा। साथ ही उसे अपने बिलों का भुगतान भी नहीं करना पड़ा। वास्तव में उसकी प्रसन्नता का कारण पैसों की बचत न होकर उपरोक्त स्थितियों का निर्मित होना था, जिससे वह अन्दर से अच्छा अनुभव कर रही थी। हम यही तो चाहते हैं कि लोग हमारे विषय में अच्छी धारणा रखें और हमारी प्रशंसा करें।

जब कोई हमारे बारे में अच्छी धारणा बना लेता है और इसे प्रकट भी कर देता है, तो इससे हमें और अधिक अच्छा बनने की प्रेरणा मिलती है और हम निरन्तर अच्छा करने की स्थिति में आ जाते हैं। इससे प्रसन्नता का निरन्तर प्रवाहित होनेवाला स्रोत सक्रिय हो जाता है। घटनाएँ हमारी इच्छानुसार घटित हो सकती हैं, इसमें संदेह नहीं, लेकिन हमारी प्रसन्नता उस समय चरम पर पहुँच जाती है, जब हम दूसरों की प्रसन्नता के लिये उसे त्यागने के लिए भी तत्पर हो जाते हैं अथवा किसी की प्रसन्नता का कारण बन जाते हैं। इस ब्रह्माण्ड में किसी वस्तु की कमी नहीं है। सच्चे मन से जो चाहोगे अथवा माँगोगे, वह अवश्य मिलेगा। लेकिन **धन-सम्पत्ति के साथ-साथ उसके सदुपयोग की योग्यता भी अवश्य माँग लेनी चाहिए।** तभी प्राप्त समृद्धि से वास्तविक प्रसन्नता मिल सकेगी। ○○○

पृष्ठ ४०५ का शेष भाग

जाते। भगवान की जिन सूक्ष्म तन्मात्राओं से पञ्चतत्त्व लेकर हमारा यह शरीर बना है, वही पञ्चतत्त्व रूप इस स्थूल शरीर के नष्ट होने पर बचा रहता है और वे पाँचों तत्त्व जाकर तन्मात्रा में विलीन हो जाते हैं। आखिर वह तो भगवान का रूप ही है। भगवान के किसी अंग का विनाश तो नहीं हुआ। भगवान को अक्षर बताकर अर्जुन को बोध हुआ कि यह बात पूरी तरह सही नहीं है, इसलिए अपने को सुधारकर कहा अव्यय। (**क्रमशः**)

रामराज्य का स्वरूप (७/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

अभी आप श्रद्धेय स्वामीजी महाराज से जो संक्षेप सार श्रवण कर रहे थे, वह संक्षेप बड़ा अनूठा भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन के दृष्टान्त के द्वारा एक पूरक प्रसंग के रूप में हम लोगों के लिये बड़ा प्रेरक है। उनकी ये अनुभूतियाँ सर्वथा सत्य हैं। वे अनुभव की गयीं और उसे इस युग में भी हम अनुभव कर सकते हैं। वे भगवान श्रीरामकृष्ण के दृष्टान्त के द्वारा हम लोगों के समक्ष रखी गईं। मुझे विश्वास है कि हमलोगों के विश्वास-वृद्धि के लिये यह दृष्टान्त परम सहायक होगा। अब आइए, कथा-सूत्र को हम वहाँ से आगे की ओर ले चलें, जहाँ पर कल उसका समापन किया गया था। मैं आशा करता हूँ कि आप उसे पूरी एकाग्रता और तन्मयता से सुनेंगे।

किन समस्याओं के कारण रामराज्य की स्थापना नहीं हो पाती, वे कौन-सी वृत्तियाँ हैं, जो रामराज्य में बाधक हैं, उनकी चर्चा आपके समक्ष पिछले दिनों विस्तार से की गई थी। इस सन्दर्भ में उन वृत्तियों के निराकरण में श्रीभरत की क्या भूमिका है, यह प्रसंग कल प्रारम्भ किया गया था। आइए, इस प्रसंग पर आज भी एक दृष्टि डालने की चेष्टा करें।

महाराज श्रीदशरथ के मरणोपरान्त सम्पन्न होनेवाला संस्कार श्रीभरत के द्वारा पूरा किया गया। उसके पश्चात् अयोध्या में एक सभा आमन्त्रित की गई। उस सभा के दो मुख्य वक्ता थे – गुरु वशिष्ठ और श्रीभरत। धर्म के सम्बन्ध में दोनों महापुरुषों के विचारों में जो पार्थक्य था, उस पार्थक्य का बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन उन दोनों के संवाद में आपको मिलेगा। आप उस प्रसंग को यदि विस्तार से पढ़ें, तो उसमें संक्षेप में वर्णाश्रम धर्म की व्याख्या गुरुदेव के द्वारा की गई। हमारे शास्त्रों में चार वर्णों और चार आश्रमों का विभाजन किया गया है। गुरु वशिष्ठ ने अपने भाषण का प्रारम्भ धर्म और आश्रम की व्यवस्था को लेकर किया। पर वह तो उनकी भूमिका मात्र थी। वस्तुत: वे श्रीभरत को प्रेरित करना चाहते थे कि धर्म की परम्परा हमारे देश में इतने व्यापक और समादरणीय रूप में स्वीकार की गई है। उन्होंने वर्ण, आश्रम और धर्म का निरूपण करने के पश्चात् महाराज श्री दशरथ के विषय में भाषण दिया। उन्होंने कहा – भरत ! महत्व मात्र व्यक्ति का नहीं है, महत्त्व तो धर्म का है। तुम्हारे पिता ने सचमुच धर्म की मर्यादा का पालन किया। इतना ही नहीं, उन्होंने महाराज श्री दशरथ की प्रशंसा करते हुए कहा कि सूर्यवंश की परम्परा में अनगिनत राजाओं से मेरा सम्पर्क हुआ और सभी धर्म की परम्परा में आरूढ़ थे, लेकिन बिना संकोच के यह बात कह सकता हूँ कि उन समस्त राजाओं में तुम्हारे पिता जितने महान थे, वैसा महान व्यक्ति सृष्टि में न तो पहले कभी उत्पन्न हुआ और न तो भविष्य में उत्पन्न होगा। यह गुरु वशिष्ठ का वाक्य है। वर्ण और आश्रम के सम्बन्ध में उन्होंने जो पंक्तियाँ कहीं, वह बड़ा विस्तृत है। वे महाराज दशरथ की प्रशंसा करते हुए कहते हैं –

भयउ न अहइ न अब होनिहारा।

भूप भरत जस पिता तुम्हारा।। २/१७२/६

यदि गुरु वशिष्ठ से प्रश्न किया जाय कि अन्य धर्मात्मा राजाओं की तुलना में महाराज श्रीदशरथ में क्या विशेषता थी, तो उन्होंने इसका बड़ा सुन्दर विश्लेषण किया। उनका जो भाषण था, वह समाज को दृष्टिगत रखकर नहीं दिया गया था, अपितु भरत को दृष्टिगत रखकर दिया गया था। भरत भावुक हैं, भक्त हैं, यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध थी और वशिष्ठजी भरतजी की भक्ति और भावुकता से भलीभाँति

परिचित थे। कई बार धर्म और भक्ति में सामंजस्य की बात कही जाती है। कर्तव्य-कर्म धर्म का अंग है और भक्ति के मूल में भावना है। तो कर्तव्य और भावना यदि जीवन में परस्पर एक दूसरे के पूरक हों, तो यह सर्वोत्कृष्ट बात है। लेकिन प्रश्न यह आता है कभी-कभी भावना और कर्तव्य में यदि परस्पर भिन्नता हो, तो व्यक्ति को भावना को महत्त्व देना चाहिए कि कर्तव्य को महत्त्व देना चाहिए? दूसरे शब्दों में कहें, सांसारिक अर्थों में भी भावना शब्द का प्रयोग लिया जाता है, पर भावना का सम्बन्ध यदि भक्ति से जोड़कर विचार करें, तो फिर यह प्रश्न आता है कि धर्म और भक्ति में अगर सामंजस्य न हो सके, तो हम धर्म को अधिक महत्त्व दें कि भक्ति को अधिक महत्त्व दें? कर्तव्य को अधिक महत्त्व दें कि भावना को अधिक महत्त्व दें? तो साधारण तथा प्रचलित भाषा में तो यह बात आपने कई बार सुनी होगी कि भावना की तुलना में कर्तव्य का महत्त्व अधिक है। पर यह वाक्य जितना प्रचारित है, मैं समझता हूँ कि यह वाक्य उतने महत्त्व का नहीं है। वस्तुत: इसको यूँ यदि हम कहें कि यदि यह विवाद किया जाए कि शरीर का महत्त्व अधिक है कि प्राण का, तो इसका क्या उत्तर हो सकता है? शरीर के बिना प्राण रहेगा कहाँ, इस दृष्टि से शरीर का बड़ा महत्त्व है। यह शरीर ही तो सामने है, जिसमें प्राण सक्रिय हो रहा है। किन्तु शरीर में यदि प्राण न हो, तो ऐसी स्थिति में शरीर की क्या सार्थकता है? शरीर और प्राण की तुलना की गई, शरीर यदि कर्तव्य कर्म है, तो भावना उसका प्राण है। ऐसी स्थिति में इन दोनों के लिये सामंजस्य की अपेक्षा है। किन्तु इन दोनों में यदि सामंजस्य न हो सके, तो शरीर को अधिक महत्त्व देना चाहिए या प्राण को? रामायण में आगे चलकर गुरु वशिष्ठ के विचार परिवर्तित हुए। अभी प्रारम्भ में जो चर्चा मैं कर रहा हूँ, इसमें तो गुरु वशिष्ठ और भरत की मान्यताओं में मतभेद था, लेकिन गुरु वशिष्ठ जब श्रीभरत के साथ चित्रकूट गये या गुरु वशिष्ठ के साथ श्रीभरत चित्रकूट गये और वहाँ गुरु वशिष्ठ ने जो एक नई दृष्टि प्राप्त की, तब वे बहुत बदल गये। गुरु वशिष्ठ धर्म के आचार्य थे। उनका मुख्य उपदेश कर्तव्य कर्म के लिए ही हो, यह स्वभाविक है, लेकिन चित्रकूट पहुँचकर गुरु वशिष्ठ इतने परिवर्तित हो जाते हैं कि वे वहाँ कहते हैं –

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊँ।
जहँ न राम पद पंकज भाऊ।। २/२९०/१

वह सुख, कर्म और धर्म जला देने योग्य है, जहाँ राम के चरणों में भावना नहीं है, प्रीति नहीं है।

यह बात दृष्टान्त के द्वारा कुछ हृदयंगम की जा सकती है। एक व्यक्ति के शरीर में प्राण हो और उसके प्रत्येक अंग में सक्रियता हो, यह तो आदर्श स्थिति है। लेकिन एक ऐसे व्यक्ति की हम कल्पना करें, जिसके शरीर में प्राण का स्पन्दन तो है, पर किसी अंग में सक्रियता का अभाव है। ऐसे अनेक व्यक्ति होते हैं, जिनके शरीर में प्राण है, पर उनके अंग स्वस्थ नहीं हैं या अंगों में से किसी अंग का अभाव है। यदि इन दोनों स्थितियों की तुलना करें, तो प्राण को ही अधिक महत्त्व मिलेगा। क्योंकि अंग में कमी होने पर भी, किसी अंग में दोष होने पर भी यदि शरीर में प्राण विद्यमान है, तो उस शरीर की रक्षा करना कर्तव्य है और उस शरीर की उपयोगिता है। किन्तु यदि शरीर में सारे के सारे अंग – आँख, कान, हाथ-पैर प्रत्येक अंग ज्यों के त्यों विद्यमान हों, पर शरीर में प्राण ही न हो, उसके प्रत्येक अंग अत्यन्त सुन्दर हों, पर सारे अंग के सौन्दर्य का वर्णन करने के बाद, उस व्यक्ति की आँख इतनी सुन्दर है, नाक इतनी सुन्दर है, इसके बाद एक वाक्य उसमें और जोड़ दिया जाए कि किन्तु उसमें प्राण नहीं है। तब तो यही कहेंगे कि ले जाकर जला दो। इसका अभिप्राय यह है कि मान्यता भक्ति की यह है कि कर्तव्य कर्म में यदि कोई कमी रह जायेगी, तो भी काम चलेगा, लेकिन उसमें भक्तिरूपा प्राण नहीं होगा, तो वह धर्म जला देने योग्य होगा। यही गुरु वशिष्ठ का निष्कर्ष था।

यह विवाद परस्पर चलते रहता है। स्वाभाविक रूप से समाज से जुड़ा हुआ व्यक्ति कर्तव्य को महत्त्व देना चाहता है और उसके पीछे उसकी स्वार्थ-बुद्धि भी होती है, क्योंकि स्वाभाविक रूप से जब कोई कर्तव्य कर्म का पालन करता है, तो वह समाज के लिए अधिक उपयोगी होता है और जब कोई व्यक्ति कर्तव्य कर्म का पालन नहीं करता है, तो समाज के लिये उसकी उतनी उपयोगिता नहीं होती है। इसलिए यदि सामाजिक मान्यतावाले व्यक्ति भावना की तुलना में कर्तव्य को अधिक महत्त्व देते हैं, तो यह स्वाभाविक ही है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जब कर्तव्य कर्म का समर्थन करता है, तो इसके पीछे कहीं-न-कहीं उसकी स्वार्थपरक जो बुद्धि है, वह सक्रिय रहती है।

श्रीरामचरितमानस में इस पर व्यापक विचार किया गया है। गुरु वशिष्ठ ने कहा कि भरत, तुम्हारे पिता की महानता इस बात में थी कि उन्होंने धर्म और भावना, दोनों में सामंजस्य स्थापित करके दिखाया। यह उनके व्यक्तित्व की पूर्णता थी। यदि वे केवल प्रेमी होते, भावुक होते, तो शायद राम को वन जाने से रोक देते और वे कह देते कि कुछ भी हो, मैं तुम्हें वन जाने का आदेश नहीं दूँगा। ऐसा यदि उन्होंने किया होता, तो यह उनकी भावुकता की विजय होती कि उन्होंने भावना और प्रेम के प्रवाह में धर्म की उपेक्षा कर दी।

यह पक्ष भी रामायण में आता है। किसी संत ने सुनाया था। उन्होंने तो बड़ी कठोर भाषा का प्रयोग कर दिया। उन्होंने उसके पूरे पक्ष पर ध्यान नहीं देकर कह दिया – महाराज दशरथ के चरित्र में क्या विशेषता है? जब उन्होंने सत्य के लिये राम का परित्याग कर दिया, तो ऐसी स्थिति में वे धर्म की दृष्टि से वन्दनीय हो सकते हैं, पर भक्ति की दृष्टि वन्दनीय नहीं। गुरु वशिष्ठ ने कहा – नहीं, ऐसी बात नहीं है। अगर उन्होंने कर्तव्य कर्म के लिये, सत्य और धर्म के लिए श्रीराम का परित्याग कर दिया होता, तो वे सत्यवादी होते और यदि भावुकता में सत्य छोड़ दिया होता, तो वे भावुक होते। पर उन्होंने दोनों का निर्वाह करके दिखलाया। उन्होंने उन दोनों का बहुत बड़ा मूल्य चुकाया। उन्होंने कहा कि महाराज श्रीदशरथ ने भावना और कर्तव्य दोनों का सामंजस्य करके जितना मूल्य चुकाया उतना मूल्य इस संसार में अभी तक किसी ने नहीं चुकाया और शायद चुका भी न पावे। महाराज दशरथ ने अपनी सत्यनिष्ठा का इतना बड़ा प्रमाण दिया –

तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। २/१७३/४

(क्रमशः)

पृष्ठ ४०२ का शेष भाग

समापन समारोह में अफ्रीका के मसाक्वाई ने ईसा के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन किया कि उन्हीं के कारण असभ्य अफ्रीका में धर्म का प्रकाश फैला। समापन समारोह के दिन अफ्रीकी मेथोडिस्ट इपीस्कोपल चर्च के प्रभावोत्पादक वक्ता विशप बी.डब्ल्यू. ऑरनेट ने कहा कि आज अधिक उपस्थिति काले लोगों की है तथा ईसाइयों के मन की भ्रान्तियाँ दूर हुई हैं। उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि श्रेष्ठता रंग से प्राप्त नहीं होती। सभापति बोने ने पूर्व के धर्माचार्यों को अत्यन्त सम्मान देते हुए सम्मेलन का समापन इस वक्तव्य से किया – ''यह मैत्री सम्मेलन था। यह युद्ध-क्षेत्र नहीं था। अगर पश्चिम के योद्धा ने यह भूल कर भी दी और युद्ध का आह्वान कर भी दिया, तो हमें प्रसन्नता है कि पूर्व से आए हमारे मित्रों ने बड़े दया भाव से ईश्वर से प्रार्थना की है कि हे पिता, इन्हें क्षमा कर दो, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।''

कुछ धर्मान्ध ईसाई पादरियों ने स्वामीजी को चाय में विष पिलाकर मारने का प्रयास किया था, पर ठाकुर ने उन्हें चाय पीने से रोका। इन सबसे हमारी धारणा यदि ईसाइयों के प्रति खराब बनती है, तो इसमें हमारा दोष नहीं है। पर सारे पक्षों को देखकर मुझे लगता है कि प्रारम्भ में कोई ऐसा षड्यन्त्र नहीं था कि पूरे विश्व में ईसाई धर्म छा जाए। बाद में स्वामी विवेकानन्द की लोकप्रियता देखकर ईसाइयों के एक वर्ग की भावनाएँ अवश्य बदल गईं।

पर भारत और विश्व के लिए विश्व-धर्म-सम्मेलन का महत्त्व का अभी पूरा मूल्यांकन नहीं हुआ है। भारत में ईसाई पादरियों का धर्मान्तरण-अभियान चल रहा था। ब्राह्म समाज एक तरह से ईसाई धर्म का भारतीय रूपान्तर ही था। ब्राह्म समाज के संस्थापक श्री राजा राममोहन राय विदेशी शासन से व केशवचन्द्र सेन ईसा से अत्यन्त प्रभावित थे। ऐसी परिस्थितियों में यदि श्रीरामकृष्ण का अवतरण न होता, तो भारत में जो आज हिन्दुत्व दिखाई पड़ा रहा है, वह शायद और भी कमजोर अवस्था में दिखाई देता। श्रीरामकृष्ण ने अपने कार्य का माध्यम स्वामी विवेकानन्द को बनाया। सन् १८९३ में जब वे धर्म-सम्मेलन के लिए गए, तब तक वे भारत में भी एक अपरिचित संन्यासी ही थे। विश्व-धर्म-सम्मेलन ने ही उनकी ख्याति पूरे विश्व में फैलाई तथा उसी का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। इस प्रकार विश्व-धर्म-सम्मेलन भारत के लिए काफी महत्त्व रखता है। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (२८)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

भाष्य : भगवन् एतस्मिन् पुरुषे शिर:पाणि-आदिमति कानि करणानि स्वपन्ति स्वापम् कुर्वन्ति स्व-व्यापारात् उपरमन्ते कानि च अस्मिन् जाग्रति जागरणम् अनिद्रावस्थाम् स्वव्यापारम् कुर्वन्ति? कतर: कार्य-करण-लक्षणयो: एष: देव: स्वप्नान् पश्यति? स्वप्न: नाम जाग्रद्-दर्शनान् निवृत्तस्य जाग्रत्-वत् अन्त:शरीरे यद्-दर्शनम्। तत् किम् कार्य-लक्षणेन देवेन निर्वर्त्यते किं वा करण-लक्षणेन केनचित् इति अभिप्राय:।

भाष्यार्थ : हे भगवन्, सिर-हाथ-पैर आदि वाले इस पुरुष (शरीर) में कौन-कौन से करण (इन्द्रियाँ, प्राण आदि) सो जाते हैं, अर्थात् अपने-अपने कार्य करना बन्द कर देते हैं? और कौन-कौन से (करण) जागते रहते हैं, अनिद्रा अर्थात् बिना सोये अपने कर्म करते हैं। कार्य तथा करण इनमें से कौन-सा देव सपनों को देखता है? जाग्रत् अवस्था से निवृत्त होने के बाद, जाग्रत् के ही समान शरीर के अन्दर जो दर्शन होता है, उसी को स्वप्न कहते हैं? तात्पर्य यह है कि क्या उसे कार्य (शरीर या प्राण) रूपी देव द्वारा सम्पन्न किया जाता है, या फिर करण (मन तथा इन्द्रियों) रूपी देव के द्वारा?

भाष्य : उपरते च जाग्रत्-स्वप्न-व्यापारे यत्-प्रसन्नम् निरायास-लक्षणम् अनाबाधम् सुखम् कस्य एतत् भवति? तस्मिन् काले जाग्रत्-स्वप्न-व्यापारात् उपरता: सन्त: कस्मिन् नु सर्वे सम्यक्-एकीभूता: सम्प्रतिष्ठिता:।

भाष्यार्थ : जाग्रत तथा स्वप्न दोनों के व्यापारों (अनुभूतियों) से उपरत होने पर (सुषुप्ति काल में) जो सहज प्रसन्नता तथा अबाध सुख होता है, वह किसको होता है? उस अवस्था में जाग्रत-स्वप्न के व्यापारों से उपरत होकर (प्राण, इन्द्रिय, मन आदि) सभी भलीभाँति एकत्र होकर किसमें स्थित रहते हैं?

भाष्य : मधूनि रसवत्-समुद्र-प्रविष्ट-नदी-आदिवत् च विवेक-अनर्हा: प्रतिष्ठिता भवन्ति संगता: सम्प्रतिष्ठिता भवन्ति इति अर्थ:।

भाष्यार्थ : तात्पर्य यह है कि मधु में एकत्र (विभिन्न पुष्पों के) रस के समान और समुद्र में प्रविष्ट हुई नदियों आदि के समान – अपना-अपना वैषम्य (पहचान) खोकर, आपस में एकीभूत होकर सुप्रतिष्ठित हो जाता है।

शंका – ननु न्यस्त-दात्र-आदि-करणवत् स्व-व्यापारात् उपरतानि पृथक्-पृथक् एव स्व-आत्मनि अवतिष्ठन्ते इति एतत् युक्तम् कुत: प्राप्ति: सुषुप्त-पुरुषाणां करणानां कस्मिंश्चित् एकीभाव-गमन-आशङ्काया: प्रष्टु:।

(कार्य-समाप्ति के बाद) छोड़ दिये गये हँसिया आदि उपकरणों के समान, निद्रा के समय अपनी-अपनी जगह अलग-अलग पड़े हैं, ऐसा समझ लेना उचित था। अलग-अलग स्वयं में ही स्थित रहते हैं – यह युक्तिसंगत होता। अत: प्रश्नकर्ता कहाँ से यह निष्कर्ष निकाले कि सोये हुए व्यक्ति की इन्द्रियों का कहीं एकीभाव होता है?

समाधान – युक्त एव तु आशङ्का। यत: संहतानि करणानि स्वामि-अर्थानि परतन्त्राणि च जाग्रत्-विषये तस्मात् स्वापे अपि संहतानां पारतन्त्र्येण एव कस्मिंश्चित् संगति: न्याय्य इति तस्माद् आशङ्का-अनुरूप एव प्रश्न: अयम्।

उत्तर – यह शंका उचित ही है। चूँकि संघटित किये गए (मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि) करण किसी मालिक के प्रयोजन के लिए होते हैं और परतंत्र भी होते हैं (स्वतंत्र नहीं होते); अत: जाग्रत के विषय में यह पूछा जा रहा है कि निद्रा में भी संघटित (करणों) को किसी में जुड़कर स्थित होना युक्तिसंगत है, अत: यह प्रश्न शंका के अनुरूप ही है।

भाष्य : अत्र तु कार्य-करण-संघात: यस्मिन् च प्रलीन:

शेष भाग पृष्ठ ४२० पर

वैराग्यमय श्रीमद्भागवत

मौनी स्वामी रविपुरी जी

प्रस्तुति – श्रीअखिलेश शास्त्रीजी, प्रसिद्ध भागवत कथाकार, वृन्दावन

हम सबका लक्ष्य है दुख की आत्यन्तिकी निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति। मूल लक्ष्य है कि एक परम शान्ति का अनुभव जीवन में आ जाए। इसी के लिए हम सब साधना करते हैं, चाहे गैरिक वस्त्र में हों, चाहे किसी और वस्त्र में। हम सबको परम शान्ति चाहिए। सुख हम खरीद सकते हैं, पर शान्ति को हम खरीद नहीं सकते। तुलसी रामायण हो, चाहे श्रीमद्भागवत हो, उसमें स्पष्ट रूप से आया कि रावण ने सीताजी को प्राप्त करने के लिए प्रयास किया। मिथिला में प्रयास किया, धनुष यज्ञ में सफलता नहीं आई। फिर उसके बाद प्रयास किया अपहरण में। यह आधिदैविक वर्णन है। जहाँ भी आधिदैविक या आधिभौतिक वर्णन आता है, वहाँ साधक का कर्त्तव्य है कि उसमें से आध्यात्मिक वर्णन ढूँढ़कर निकाल ले, नहीं तो ग्रन्थ-विचार अधूरा हो जाता है। आधिदैविक वर्णन है कि रावण ने सीता की माँग की। लक्ष्य था सीता और रावण है राक्षस। असुर और राक्षस में यह भेद है। असुर अपने भोग को पुष्ट करने में लगा रहता है। राक्षस दूसरों को तंग करके भी अपने भोग की पुष्टि चाहता है। राक्षसराज रावण में राक्षसी वृत्ति है, वहाँ शान्ति असम्भव है।

आध्यात्मिक विचार से जहाँ राक्षसी वृत्ति है, वहाँ शान्ति का कोई स्थान नहीं है और शान्तिस्वरूपा हैं सीताजी – **शान्ति सीता समायुक्त आत्मारामो विराजते।** शान्ति आसुरी वृत्ति रावण का लक्ष्य था। रावण की इच्छा थी, सीता अर्थात् शान्ति की प्राप्ति। शान्ति की इच्छा में कोई दोष नहीं है, परन्तु जिस ढंग से उसने अपहरण किया, साधु भेष बनाकर, छल चातुरी करके, उसने शान्ति की कामना की, उसमें दोष है। रावण की चाह ठीक है, पर राह ठीक नहीं है। राह माने छल चातुरी करके अगर कोई शान्ति को प्राप्त करना चाहे, तो वह सम्भव नहीं है। चाह के साथ राह ठीक होनी चाहिए। वह राह है वैराग्य। उस वैराग्य को विदुरजी ने प्राप्त किया। परन्तु थोड़े समय में सर्वश्रेष्ठ वैराग्य धृतराष्ट्र ने प्राप्त कर लिया था, क्योंकि घर छोड़ने के बाद कुछ दिनों में ही शरीर छूट गया। जब किसी ने वैराग्य प्राप्त कर लिया, लक्ष्य ठीक हो गया, तो माँग पूरी होगी ही। यदि चाह परमशान्ति हो और राह प्राप्त कर ले तथा अपने साथ उस परमात्मा को जोड़ ले, तो फिर कहना ही क्या ! विदुरजी ने राह प्राप्त कर ली, पर उस समय उनके अन्दर जो भावना थी, उसको प्रकट किया। संसार में एक मेल-मिलाप होता है, जैसे बच्चे खिलौनों के साथ खेलते हैं, खिलौनों का मेल-मिलाप, संयोग-वियोग तथा खिलौनों की आपस में शादी होती है, इसी प्रकार ये सम्पूर्ण संसार ईश्वर की इच्छा से खिलौनों की तरह है। हम मिलते-बिछुड़ते हैं।

यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह।
इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम्।।
(१/१३/४२)

जैसे बच्चे अपनी इच्छा से खिलौने की शादी अथवा संयोग-वियोग ये सब करते हैं, इसी प्रकार **ईशेच्छया नृणाम्** – ईश्वर की इच्छा से इस संसार में मिलना और बिछुड़ना होता है।

भगवान का प्रकट होना तभी सम्भव है, जब मन पूर्णतया परमात्मा में लग जाता है और संसार से वैराग्य हो जाता है। 'ईशेच्छया' इस प्रसंग में एक बात और कहना चाहता हूँ। ज्ञान मार्ग में जो चलते हैं, उनको ईश्वर, भगवान इन शब्दों

से एलर्जी है। तुलसीदास जी कहते हैं –

ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, करै न दूसरी बात।

परन्तु जिस ढंग से यहाँ कहा गया है 'तथैव ईशेच्छया', तो भगवान को हमें मानना ही पड़ेगा। अगर हम नहीं माने, तो हम शांकर परम्परा के नहीं हैं। क्यों? क्योंकि **ईश्वरेच्छया तृणमपि वज्रीभवति** – भगवान चाहे तो एक तिनका भी वज्र के समान हो सकता है **(केनोपनिषद वाक्य भाष्य)।**

शंकराचार्य ने जो शब्द प्रयोग किया ईश्वर की इच्छा, विदुरजी ने भी वही शब्द प्रयोग किया। जब हम अपने अन्दर अच्छी तरह से यह शब्द बैठा लेते हैं, तो वैराग्य की पुष्टि हो जाती है। संयोग-वियोग आदि में अपने मन के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह जान लेता है –

जीते थे जो लोग कपड़े बदल-बदलकर।
जाएँगे वे एक दिन कन्धे बदल-बदलकर।।

विदुरजी ने स्पष्ट कर दिया कि ईश्वर की इच्छा से संयोग और वियोग सब कुछ सम्भव है।

लोकवत्तुलीला कैवल्यम्। (ब्र. सूत्र)

अब ईश्वर की जब इच्छा है, तो क्या ईश्वर इसमें फँसे रहते हैं? श्रीशुकदेवजी कहते हैं –

गृहेषु तासामनपायतर्क्यकृत्
निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः।
रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो
यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन्।। (१०/५९/४३)

जैसे आम आदमी संसार में, गृहस्थ आश्रम में जीवन यापन करते हैं, ठाकुरजी भी वैसे ही कर रहे थे। परन्तु उत्कृष्ट प्रासाद आदि में पटरानियाँ रहते हुए भी, ठाकुरजी के पास सम्पूर्ण ऐश्वर्य रहते हुए भी, इनमें उनका मन नहीं लगता। जो अस्पर्श योग हम माण्डूक्य उपनिषद् में सुनते हैं, उस योग का पूर्णतया प्रतिफलन श्रीकृष्ण में देखा गया है। एक विरक्त संत हुए ऋषभदेव जी। ५०-६० वर्ष पहले किसी आश्रम से तिरस्कार होने के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि आज के बाद आश्रम में नहीं रहना है। पेड़ के नीचे रहते थे और विद्यार्थी को पढ़ाते थे। बड़े अच्छे महापुरुष हुए। अद्वैत सिद्धि तक पढ़ाते थे। परन्तु जब तुलसी रामायण या भागवत उनके सामने आ जाता था, तो पढ़ाते-पढ़ाते रोने लगते थे। आँखों से अश्रुधारा बन्द न होती। कहते थे, निकाल दो इस ग्रन्थ को। तो पूज्य संत समाज कहते हैं, वे सचमुच वेदान्ती हैं। पढ़ाते तो वेदान्त थे, पर भक्तिशास्त्र में अश्रुधारा बहाते थे। इसका तात्पर्य क्या है?

सम्पूर्ण मन भगवान में लगाकर भगवान जिस ढंग से निर्लेप रहकर गए, उसी प्रकार हमें अपने जीवन में निर्लेप रहना सीखना चाहिए। इसमें शुकदेव जी और कहते हैं – कमल कली सदृश मुख ठाकुरजी का। लम्बी भुजाएँ, सुन्दर नेत्र, प्रेममयी मुसकान, रसमयी चितवन और मधुरवाणी युक्त थे श्रीकृष्ण। जिन महापुरुषों में हमने मधुर वाणी देखी, जान लेना कि कुछ ठाकुरजी का प्रतिफलन हुआ। ठाकुरजी में जो लक्षण हैं, निश्चित रूप से महापुरुष में कुछ न कुछ तो उतर आता ही है। शंकराचार्य कहते हैं **– यत्र यत्र विभूत्याद्यतिशयः स स ईश्वर इत्युपास्यतया चोद्यते।। (ब्र० सू० १/१/१२)** अथवा जिन्होंने साक्षात्कार किया उनके अन्दर भी भगवदंश प्रकट हो ही जाता है –

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणाः।।

भगवान के स्वरूप में ज्ञान और वैराग्य है। हम अगर भगवान को प्राप्त करना चाहते हैं, तो वैराग्य को प्राप्त करना चाहिए। उसमें उपाय है भक्ति या ज्ञान। भक्ति और ज्ञान साधना, सुनने में तो भिन्न लगता है, परन्तु इस शताब्दी में हमारे पूज्य महापुरुष रमण महर्षि ने कहा है –

गतिरेव द्वयोरेका ध्यातुश्चात्मविमर्शिनः।
ध्यायन्नेकः प्रशान्तः स्यादन्यो विज्ञाय शाम्यति।।

जो भक्ति मार्ग से चल रहे हैं या जो ज्ञान मार्ग से चल रहे हैं, दोनों की गति ने एक लक्ष्य रखा है। ज्ञान मार्ग में जो चलते हैं, उनमें वैराग्य की प्रधानता है। शांकर सिद्धान्त में कहा गया है कि सबमें दोष दृष्टि करने से वैराग्य की पुष्टि होती है। ज्ञान मार्ग में जो चलने लगा, वह सबमें दोष देखते-देखते यहाँ तक पहुँच गया कि वह देखता है कि मेरा व्यवहार ठीक से नहीं हो रहा। कब तक ये दोष देखना? दोष देखना छोड़ देता है वह ज्ञानी। जीवन में जिसने गुण नहीं देखा, अब दोष देखना भी बन्द कर दिया। दोष-गुणरहित जो दृष्टि है, वह उसने प्राप्त कर लिया। उसको हम कहते हैं कि स्थितप्रज्ञ ज्ञानी। भक्त भी चलता है, वह किसी में दोष नहीं देखता। अगर कोई शिकायत करे, तो जान लेना वह भक्त नहीं है। क्योंकि भक्त को किसी में दोष देखना ही नहीं है, प्रभु की लीला देखनी है। भक्त बार-बार कहते

हैं – यह प्रभु की लीला है ! भक्त प्रभु की लीला देखता रहता है और उसी मार्ग से चलता है। एक जगह आकर उसको भी खटकता है। कब तक ये प्रभु की लीला देखें ! प्रभु को देखना चाहिए। जीवन में कभी दोष नहीं देखा वह, गुण देखा, अब गुण दर्शन करना भी छोड़ दिया। दोष-गुणरहित भक्त भी वहाँ पहुँच जाता है, जहाँ वह स्थितप्रज्ञ ज्ञानी पहुँचा है। रमण महर्षि कहते हैं कि गति एक ही है। जब इस प्रकार से वे वहाँ पहुँच जाते हैं, तो उनकी वाणी ठाकुरजी की तरह मीठी हो जाती है।

वाणी मीठी न होती, तो शब्द बन गया होता।
करुणा दिल में न होती, तो दिल पाषाण बन गया होता।।

यदि वाणी में मिठास नहीं है, तो वह विष है। किसी दुखी आदमी को देखकर अगर दिल में करुणा नहीं है, तो वह केवल पत्थर है। योगसूत्र में है कि सुखी व्यक्ति से मैत्री, दुखी के प्रति करुणा, पापी की उपेक्षा आदि। दुखी आदमी को देखकर करुणामय हो जाना चाहिए।

छलना प्रेम में नहीं होती, तो प्रेम वरदान बन गया होता।
माँगना भक्त में नहीं होती, तो भक्त भगवान बन गया होता।।

प्रेम में अगर छल है, तो वह प्रेम नहीं है, दिखावा है। हमेशा भगवान से लोग माँगते ही रहते हैं। यदि भगवान से माँगना हो, तो तीन चीजें माँग लीजिए – हे परमात्मा ! मुझे विश्वास दो। हे परमात्मा ! मुझे धीरज दो। हे परमात्मा ! मुझे सहनशक्ति दो। ये तीन अगर आ जाएँ, तो श्रीकृष्ण के समान हम भी निर्लेप हो सकते हैं। श्रीकृष्ण को देखकर पटरानी उनसे सम्मोहित हो जाती थीं। परन्तु श्रीकृष्ण का मन जीतने के लिए सब असमर्थ रह गए। कोई समर्थ नहीं हो पाया। रुक्मिणीजी के मुख से तो निकल ही गया।

अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किंचित् जुगुप्सितम्।
(१०/५३/२४)

भगवान जो परम पवित्र हैं, निश्चित ही उन्होंने हमारे अन्दर कुछ कमी देख ली। तभी तो मेरे साथ वार्तालाप करने के लिए, पाणिग्रहण करने के लिए आते नहीं, अवश्य मेरे अन्दर कुछ कमी है। रुक्मिणी के मन में ये शब्द आया। यही है वैराग्य का एक सूत्र। वैराग्य का तात्पर्य है कि मैं इस संसार के योग्य नहीं हूँ, परमार्थ के योग्य भी नहीं हूँ।

रुक्मिणी ने सोचा कि मेरे साथ लीला करने के लिए श्रीकृष्ण उत्साह नहीं दिखाते हैं, क्यों? जब रुक्मिणीजी ने इस प्रकार कहा, तो ठाकुरजी रुक्मिणी जी को कह रहे हैं –

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः।।
(१०/६०/२०)

अब ये देखिये वैराग्य की पराकाष्ठा ! श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि हम उदासीन हैं। किससे उदासीन हैं? स्त्री, अपत्य, पत्नी-पुत्र, अर्थ सबसे मैं उदासीन हूँ। ठाकुरजी स्वयं कहते हैं, मैं उदासीन हूँ, कहीं चिपके नहीं। **'न क्वचित् प्रतिष्ठितं चित्तं उत्पादनीयम्'** – मन को कहीं फँसाना नहीं। यह श्रीकृष्ण की शिक्षा है। संसार में कहीं भी मन न फँसे। यह संसार तब तक ठीक है, जब तक हम इसके योग्य हैं। जब हम अपने को योग्य समझते हैं, तभी मन फँस जाता है। ठाकुर जी कहते हैं – उदासीना वयं नूनं। निश्चित रूप से मैं उदासीन हूँ। पूर्ण वैराग्य से युक्त हूँ। अस्पर्श योग से युक्त हूँ। थोड़ी-सी भाषा बदल के पुरुषोत्तम रामजी कह गए **को लोकमाराधयितुं समर्थः –** इस संसार को खुश करने में कौन समर्थ है? मैं नहीं कर पाया। जब मन में इस प्रकार की भावना आ जाए, तो जान लेना कि अभी आपके अन्दर वैराग्य का स्फुरण हुआ। इस संसार को खुश करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। गुरुनानक देव जी कहते हैं, सब गलत नहीं है – **मैं नहीं चंगा बुरा नहिं कोय। प्रणमत् नानक तारे सोई।।** जो इस प्रकार कहता है, मैं अच्छा नहीं हूँ, पर कोई गलत भी नहीं है, उसको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अपने को गलत मानता है, संसार के योग्य मानता नहीं, तो यह हुआ वैराग्य का द्वितीय लक्षण। जब इस प्रकार श्रीकृष्ण ने कहा, तो रुक्मिणीजी उत्तर दे रही हैं –

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह
यद् वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः
क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा।। (१०/६०/३४)

हे भगवान, हे कमलनयन ! आपने जो कहा, वह बिल्कुल ठीक है, आप सबके प्रकाशक हैं, सर्वव्यापी हैं। समसत्ता में प्रेम सम्भव है, विषम सत्ता में प्रेम सम्भव नहीं है। रुक्मिणीजी धीरे-धीरे अपने को लौकिक, भौतिक, प्राकृतिक सत्ता में स्थापित कर रही हैं, किन्तु ठाकुरजी हैं – अलौकिक, अप्राकृतिक, अभौतिक दिव्य सत्ता में। कैसे मेल-मिलाप सम्भव है? रुक्मिणीजी कह रही हैं – आप तो तीनों गुणों

के मालिक हो और कहाँ मैं हूँ अज्ञानी। आपका जो मार्ग है, वह भी अस्पष्ट है। आपका मार्ग छोड़ो, आपके भक्तों की जो चेष्टा है, वह भी अस्पष्ट मार्ग है।

त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां।
वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम्।। (१०/६०/३६)

आपका चरणकमल जिसने पकड़ लिया है, ऐसे अनेक सन्तमहापुरुष ऋषि मुनि हुए, उनका मार्ग भी अस्पष्ट है। उनको भी हम समझ नहीं पाते। क्योंकि आपकी चेष्टाएँ अलौकिक हैं, इसलिए आपके भक्तों की चेष्टाएँ भी अलौकिक होना स्वाभाविक है। उनको भी हम समझ नहीं पाते। आज तक किसी महापुरुष को, किसी ऋषि-मुनि को कोई ठीक ढंग से समझा नहीं। सच्ची बात तो यह है कि यदि कोई ठीक से समझ लिया, तो उसका कल्याण हो जाता है। जो गुरु हैं, सन्त हैं, वे साक्षात् परमपितास्वरूप हैं। उत्कृष्ट सात्त्विक श्रद्धा प्रगट हो जाए, तो ठाकुरजी का मिलना निश्चित है। रमण महर्षि कहते हैं, जो प्रीति भगवान में है, वही प्रीति तैलधारावत् अगर गुरु में, संतों में हो जाए (भगवान सामने नहीं हैं, तो गुरु में वह प्रीति हो जाए), तो वह चाहे या न चाहे, पारमार्थिक स्थिति हो ही जाएगी। भक्ति मार्ग के शब्दों में परमात्मा के योग्य उसका होना निश्चित है। रुक्मिणीजी कह रही हैं, मैं समझ नहीं पाती हूँ, क्योंकि अस्पष्ट मार्ग है। अस्पष्ट मार्ग माने आपकी चेष्टाएँ, लीलाएँ अस्पष्ट हैं। ध्यान रखना कि हमारी जो साधनाएँ हैं, वे भी अस्पष्ट हैं। पूज्य अखण्डानन्द जी महाराज बार-बार कहते थे मार्ग तो अस्पष्ट ही रहेगा, लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए। बहुत सुन्दर शब्द, क्योंकि मार्ग तो अपरिचित है, इसलिए अस्पष्ट है। महापुरुष कुछ संकेत करके जाते हैं। संकेत अर्थात् मील का पत्थर। वह मार्ग नहीं है, किन्तु उसी के सहारे हम आगे चलते हैं। कोई प्यासा भटकते-भटकते दूर तक पहुँच गया। रास्ते में कोई मिल गया। उसने पूछा कि पानी कहाँ मिलेगा? उस व्यक्ति ने कहा, तुम पहाड़ के ऊपर आ गए हो। नीचे पेड़ के पास नदी बह रही है। वहाँ जाके पानी पी लो। इसी प्रकार महापुरुष मार्ग दिखा देते हैं। प्यासा को वहीं पानी पीना पड़ेगा। अस्पष्ट मार्ग है, पर लक्ष्य स्पष्ट है। रुक्मिणीजी बार-बार कह रही हैं कि अस्पष्ट मार्ग में आपको पहचानना बहुत कठिन है। क्योंकि आप निष्किंचन हो। इसके बाद आ रहा वैराग्य का शब्द। वे कहती हैं –

निष्किंचनो ननु भवान् न यतोऽस्ति किञ्चित्
(१०/६०/३७)

आपसे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, इसलिए आप निष्किंचन हो। जिसके पास कुछ नहीं है, उसको हम निष्किंचन कहते हैं। कुछ नहीं है का अर्थ यह है कि सब कुछ वे ही हैं। आप निष्किंचन हो और जो आपको छोड़कर देवी देवताओं के पीछे भागते रहते हैं, भेंट अर्पण करते हैं और साथ-साथ मानो आपको भी भेंट अर्पण करते हैं, उनको ये पता नहीं कि आप ही काल रूप से उसके सिर पर खड़े हैं।

न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः।
(१०/६०/३७)

अशुभ चिन्तन विलासी व्यक्ति तो अपने भोग में ही रहते हैं। भोग की पुष्टि के लिए देवी-देवताओं को भोग लगाते हैं और आपको भी भोग लगाते हैं। वे नहीं जानते कि आप कालस्वरूप हैं 'कालोऽस्मि लोके'। इसमें कारण क्या है? श्रीकृष्ण कहते हैं, जो मुझको प्राप्त नहीं किया, उसके बारे में मैं नहीं कहना चाहता हूँ। परन्तु

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसम्पदं ।
वांछन्ति ये सम्पद् एव तदपतिम् ।।
.... ते मन्दभाग्याः। (१०/६०/५३)

मैं तो मोक्ष तथा सम्पूर्ण सम्पदाओं का आश्रय हूँ, अधीश्वर हूँ, मुझे प्राप्त कर भी जो लोग विषयाभिलाषा करते हैं, मेरी पराभक्ति नहीं चाहते, वे बड़े मन्दभागी हैं। विषयसुख तो नरक में और तिर्यक् योनियों में भी प्राप्त है।

रुक्मिणीजी ने स्पष्ट रूप रूप से कह दिया कि मैं जीवकोटि में माने विषयासक्त हूँ। आप ईश्वरकोटि में हैं। फिर भी ठाकुरजी सम्बोधन करते हैं मानिनी। सम्बोधन भी सीखना चाहिए। सम्मान, सुविधा, स्नेह देने के लिए हैं, लेने के लिए नहीं। इतना ही हम अपने जीवन में उतारें, तो आगे बढ़ सकते हैं। ठाकुरजी कह रहे हैं 'मानिनी' (रुक्मिणी)। जिसको कोई सम्मान देता नहीं, उसको भी ठाकुरजी सम्मान देते हैं। वे 'सुन्दरी' शब्द से कुब्जा को भी सम्बोधन करते हैं। श्रीकृष्ण उत्साहित करने की भाषा में कह रहे हैं।

यदि अज्ञानी, अविद्या से युक्त शिष्य भी आ जाए, तो भी गुरु कहते है – विद्वान। तू चिन्ता न कर, **संसारसिन्धुः तरणे अस्ति उपायः** – संसार सागर पार करने के लिए उपाय है। जिस रास्ते से महापुरुष चले गए हैं, वह रास्ता

मैं तेरे को बता दूँगा (वि.चू.)। ठीक जगह पर उचित वाणी प्रयोग करना चाहिए। ठाकुरजी कहते हैं माणिनी, मेरे को प्राप्त करने के पश्चात् भी, संसार के जो स्वामी हैं, उसे प्राप्त करके भी जो अन्य कुछ माँगता है, वह मन्दभाग्य है। जीव नरक में भी भोग को उचित मानता है। कुन्तीजी कहती हैं –

जन्मैश्वर्य श्रुतश्रीभिरेधमानमदःपुमान्। (१/८/२६)

मैंने इस कुल में जन्म लिया, मैं अमुक गुरु का शिष्य हूँ। मेरा ऐश्वर्य है, इतना धन है। मेरे सदृश कौन है इत्यादि, इसी में घमण्ड की वृद्धि होती है। **नहिं कोऊ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाही।।** जिसके अन्दर प्रभुता आ गई, उसे घमण्ड न हो, यह असम्भव है। चार चीजें घमण्ड के लिए हैं – जवानी, धन-सम्पत्ति, प्रभुता (प्रतिष्ठा) और मूर्खता –

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।।

कोई एक ही अनर्थ के लिये पर्याप्त है, जिसमें चारों हों, उसके लिये क्या कहना ! कुन्तीजी कह रही हैं, जो

मानमद युक्त है, वह आपको प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि आप तो अकिंचन का विषय हैं। अकिंचन गोचरम् माने जिसके अन्दर वैराग्य पूर्ण मात्रा में है। उस अकिंचन का लक्ष्य हैं आप। निष्किंचन हैं कृष्ण, अकिंचन है भक्त। सूरदास कहते हैं 'सुने री मैंने निर्बल के बल राम' कुन्तीजी मानो कहती हैं, सुने री मैंने निर्धन के घनश्याम। कृष्ण अनुयायी संसार पर क्यों भरोसा रखे? किसी कृष्ण-भक्त को भगवान को छोड़कर संसार पर भरोसा नहीं रखना चाहिए। मीराजी कह गईं – **मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।** पर गोकर्ण भागवत में कहते हैं – पहले वैराग्यरसिको भव, फिर मेरे तो गिरधर गोपाल (भवभक्तिनिष्ठः)। इस प्रकार से हम निश्चित रूप से स्वीकार करते हैं कि जब ठाकुरजी से वैराग्य का प्राकट्य हुआ, तो हमारे अन्दर भी वैराग्य का प्राकट्य होना निश्चित है, नहीं तो हम पशुवत् हो जाएँगे। उद्धवजी कहते हैं, ये यादव सब अभागे हैं –

दुर्भगो बत लोकोऽयं यादवो नितरामपि। (३/२/८)

अभागा है यह यादव कुल ! क्यों? लगातार भगवान के साथ रहते हुए भी उनको पहचाना नहीं। भक्ति में भी योग्यता चाहिए। जैसे वेदान्त में साधन-चतुष्टय चाहिए। साधन-चतुष्टय हो तो वेदान्त के अधिकारी हैं। धनी हो, पत्नी हो, तो यज्ञ के लिए अधिकारी है। आज कल तो ऐसे ही कह देते हैं कि भक्ति के लिए सब अधिकारी हैं, कोई योग्यता की आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु भक्ति में भी योग्यता चाहिए। अधिकारी बनना पड़ेगा। वह क्या है? शाण्डिल्य सूत्र में कहा है कि कृपा की पहचान कर सके, ये है भक्ति की योग्यता। भक्त यदि कृपा को नहीं पहचानते, तो भक्त ही नहीं हैं, योग्य ही नहीं हैं। ये यादव बिल्कुल नहीं समझे श्रीकृष्ण को। ये अभागे हैं। उद्धव जी कहते हैं, वर्षों तक उनके साथ रहकर भी, समुद्र के बीच में अमृतमय चन्द्रमा है, अमृत की उत्पत्ति समुद्र से होती है, पर मछलियों ने पहचाना नहीं '**मीना इवोडुनम्**'। अपने अन्दर वैराग्य प्राप्त करके ठाकुरजी को जो पहचाने, उनका जीवन किस प्रकार से व्यतीत हुआ? उद्धवजी पूछते हैं –

विदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान् पदमापदाम्।
तथापि भुञ्जते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत्।।
(११/१३/८)

– हे कृष्ण ! ये जीव विषय को पकड़कर रखते हैं, सुख भोगते हैं, जो आपत्ति का कारण हैं, इससे आपत्ति भी आती है, तथापि भोगते हैं। वे तो कुत्ता हैं, गधा हैं, भेड़ हैं, बकरी हैं, पुरुष के लिए अपशब्द कह दिया। केवल उद्धवजी ही नहीं, आचार्य शंकर भी कहते हैं – **अत्यन्त मूढानामेव हि विषयेषु रतिः दृश्यते, यथा पशुप्रभृतिनाम्।। (गी. भा.)** – मूढ़ व्यक्ति ही पशुवत विषय-भोग में लगे रहते हैं। उद्धवजी कहते हैं कुत्ता, गधा, भेड़, बकरी की तरह क्यों इसमें फँसे रहते हैं। जहाँ बार-बार ठोकर खाते हैं?

अतः जीवन में विषयों से वैराग्य आना चाहिये, तभी भगवत मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (८१)

स्वामी भूतेशानन्द

– ब्रह्मज्ञान हो जाने से कुछ भी कहना शेष नहीं रहता। ब्रह्म में पहुँच जाने पर सब कुछ मूकास्वादनवत् हो जाता है। मुख बन्द हो जाता है तो !

महाराज – 'ब्रह्म' शब्द कहा जा रहा है तो?

– हाँ, ऐसा कहा जा रहा है।

महाराज – किन्तु वह तो ब्रह्म का स्वरूप नहीं हुआ।

– जब तक शब्द-ब्रह्म है, तब तक वह ब्रह्मसत्ता नहीं है।

महाराज – बात हो रही है, ब्रह्म क्या है? ठाकुर ने कहा है – वह मुख से कहा नहीं जा सकता। जब हमलोग ब्रह्म बोल रहे हैं, तब भी उस 'ब्रह्म' शब्द के द्वारा ब्रह्म को नहीं कहा जा रहा है।

– यदि हमलोग ब्रह्म का अनुभव करना चाहें, तो हमलोगों को शास्त्र अर्थात् शब्दराशि का ही तो अवलम्बन लेना पड़ेगा। अर्थात् शब्द ही हमलोगों का अवलम्बन है।

महाराज – यदि शब्द का आश्रय लो, तो ब्रह्म को ग्रहण नहीं कर सकोगे।

– तो ब्रह्म को पकड़ने का, अनुभूति का उपाय क्या है?

महाराज – शास्त्र कह रहा है – वे अशब्दम्, अस्पर्शम् अरूपम्, अव्ययम्, अरसम् इत्यादि हैं ।

– हो सकता है कि वे अशब्दम् हैं, किन्तु हमलोग तो शब्द से बोल रहे हैं।

महाराज – अरे बाबा ! उनके बिना तुमलोग हो क्या?

– यही तो बात है। 'हमलोग हैं', यह तो प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। पहले आपने जो कहा, प्रत्यक्ष को भी तो स्वीकार करना पड़ रहा है।

महाराज – प्रत्यक्ष का अर्थ केवल आँखों से देखना ही होता है क्या?

– आँखों से देखना तो हो रहा है।

महाराज – नहीं, उन्हें (ब्रह्म को) आँखों से नहीं देखा जाता।

– हमलोग तो अपने अस्तित्व का साक्षात् अनुभव कर रहे हैं। समझ रहे हैं कि हमलोग हैं।

महाराज – हाँ। बात हो रही है कि ब्रह्म का स्वरूप क्या है, उसे मुख से कहा नहीं जा सकता। यह सार बात है।

– किन्तु 'ब्रह्म' शब्द ब्रह्म नहीं है, ब्रह्म को शब्द से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, इसे कौन कह रहा है?

महाराज – शास्त्र कह रहा है।

– तब उसकी उपलब्धि क्यों नहीं हो रही है?

महाराज – इस सम्बन्ध में अज्ञान है, इसलिए।

– तब क्या अज्ञान है?

महाराज – हाँ।

– तब अज्ञान को मानना होगा?

महाराज – अज्ञान को नहीं मानने से उपाय नहीं है। अज्ञान को मानना ही होगा। अज्ञान हमलोगों के लिए साक्षात् प्रत्यक्ष का विषय है।

– अज्ञान यदि प्रत्यक्ष हो, तो अज्ञान का कार्य भी प्रत्यक्ष है।

महाराज – क्या बोल रहे हो, कुछ ठीक नहीं। अज्ञान के कार्य से ही तो अज्ञान को हमलोग देखते हैं, जानते हैं। क्या अज्ञान का हाथ है या पैर है? अज्ञान को तो हम लोग उसके कार्य से ही समझते हैं।

– वही तो। अज्ञान का जो कार्य है, उसे हमलोग अपनी आँखों के सामने देख रहे हैं, उसी के सहारे तो हमलोग उसे जानते हैं।

महाराज – ठीक है, किन्तु क्या तुम उसके द्वारा ब्रह्म को ग्रहण कर सकोगे?

– इसके अतिरिक्त क्या उपाय है महाराज?

महाराज – इसीलिए कहा जाता है, ब्रह्म को पकड़ने का कोई बाह्य साधन नहीं है। यदि तुम्हीं ब्रह्म हो, तो तुम ब्रह्म को पकड़ोगे कैसे?

– यदि उपाय न हो, तो उसे पकड़ने की बात कौन कहता है?

महाराज – जो अज्ञान है, वह कह रहा है।

– समझा नहीं महाराज।

महाराज – ठीक है, पुन: सुनो। ब्रह्म को कौन पकड़ेगा? ब्रह्म को छोड़कर यदि कोई न रहे, तो ब्रह्म को कौन पकड़ेगा? ब्रह्म स्वयं ही अपने को पकड़ेगा यदि कहो, तो उससे दोष होता है। क्योंकि दो नहीं रहने से पकड़ने का प्रसंग आ ही नहीं सकता। यदि कहो कि ब्रह्म को पकड़नेवाला कोई नहीं है, तो भी दोष होगा। तब कौन जान रहा है।

– इस प्रकार कहने से शास्त्र में ब्रह्म के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, वह सब मिथ्या हो जायेगा।

महाराज – ठीक कह रहे हो। मिथ्या हो जायेगा। अज्ञान की निवृत्ति के लिए ही तो ये सब विचार है। 'तत्र वेदा अवेदा भवन्ति' – ब्रह्मप्राप्ति होने से वेद अवेद हो जाते हैं।

– ये जो अशब्दम्, अस्पर्शम् कहा जा रहा है, उसे तो शास्त्र ने शब्द के द्वारा ही कहा है। शास्त्र जिसे कहना चाहता है, उसे शब्द के द्वारा ही तो कहा जाता है।

महाराज – मान लो कोई शब्दहीन स्थान है। जब इसे समझाने के लिए कहा जा रहा है – 'शब्द नहीं है', तो यह शब्द के द्वारा ही कहा जा रहा है कि नहीं? क्या यहाँ ध्वनि प्रतिष्ठित किया जा रहा है?

– नहीं, बल्कि विषय को ग्रहण करने, समझने के लिए कहा जा रहा है। स्वरूप नहीं होने पर भी –

महाराज – 'शब्द नहीं है' कहने का अर्थ क्या शब्द की प्रतिष्ठा या स्थापित करना हुआ?

– शब्द क्यों नहीं है? 'ब्रह्म' शब्द तो व्यवहृत हो रहा है। वेद में तो 'ब्रह्म' शब्द से ही उल्लेख है।

महाराज – 'ब्रह्म' शब्द द्वारा ब्रह्म को कहा नहीं जा सकता। अशब्द का अर्थ ही हुआ, उसका कोई शब्द नहीं है। 'ब्रह्म' शब्द भी उसका शब्द नहीं है। ब्रह्म अर्थात् सर्वव्यापी सत्ता।

– महाराज ! जिसका शब्द नहीं, स्पर्श नहीं है, जबकि वह वस्तु है, तो उसका प्रमाण क्या है?

महाराज – प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। जिस विषय में संशय रहता है, उस विषय में प्रमाण की आवश्यकता होती है। किन्तु जो विषय नि:संदेह है, उसको प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है।

– कैसे नि:सन्देह हुआ? ऐसा जो अशब्दम्, अस्पर्शम् ब्रह्म है, उसके सम्बन्ध में हमलोग निसन्देह कहाँ हैं ! उसे देख नहीं पा रहे हैं ! अनुभव भी नहीं हो रहा है !

महाराज – यहाँ तुमलोग कौन हो? तुमलोग तो अज्ञान हो।

– ठीक है, हमलोग अज्ञान हो सकते हैं। किन्तु जो ब्रह्म है, यदि उसका प्रमाण न हो, तो उसका विचार करने से क्या लाभ?

महाराज – अरे बाबा ! सभी प्रमाण ब्रह्म के द्वारा ही प्रमाणित होते हैं। इसलिए वे सब ब्रह्म को प्रमाणित नहीं कर सकते।

– तब तो वह (ब्रह्म) नहीं है, यह कहना ही अच्छा होगा महाराज।

महाराज – 'नहीं' कहना तो कोई व्याख्या नहीं हुई। जो वस्तु कह रही है कि ब्रह्म नहीं है, वह वस्तु कौन-सी है?

– वही वस्तु है, जिसे शब्द के द्वारा भी जाना जा रहा है, स्पर्श से भी ज्ञात हो रहा है। जो शब्दगम्य, स्पर्शगम्य है, वही कह रहा है, यह बात है।

महाराज – यदि उसका अनुसन्धान करो, उसके स्वरूप को अनुभव करने का प्रयास करो, तब क्या कुछ पाओगे?

– यदि उसका कुछ न रहे, तब तो वह शून्य है।

महाराज – 'शून्य' कहने से भी तो शब्द के द्वारा ही कहना हुआ।

– हमलोग भी तो वही कह रह रहे हैं। शब्द के द्वारा प्रकाशित वस्तु ही है और शब्दातीत कोई वस्तु नहीं है।

महाराज – इस 'शब्दातीत' शब्द के कहने से ही ब्रह्म के स्वरूप को समझना हुआ। क्योंकि ब्रह्म के स्वरूप को बताया नहीं जा सकता। यह जो मुख से कहा नहीं जा सकता, ब्रह्म को जूठा नहीं किया जा सकता, यही ब्रह्म को समझाना हुआ।

– 'कहा नहीं जाता' यह भी तो अभी सुन रहे हैं, इसे तो समझना होगा। कहा नहीं जाता है, माने कैसे, क्यों नहीं बोला जाता है?

महाराज – 'कहा नहीं जाता', यह भी तो कहा जा रहा

है। यह तो उलटी बात है। 'कहा नहीं जाता' अर्थात् यह सब भी शब्द का ध्येय है। निश्चित ही उससे और कहा नहीं जाता, यही कहना हुआ। यह कौन-सी बात है?

– पूर्वपक्षी का तो यही कहना है, जिस वस्तु के जानने का कोई उपाय नहीं है, फिर वह है कैसे?

महाराज – नहीं, नहीं। कह रहा हूँ, सुनो। जिसके सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है, क्या उसको प्रमाणित किया जाता है क्या?

– क्यों, सन्देह का कोई स्थान ही नहीं है।

महाराज – बता रहा हूँ – जैसे तुम्हारे सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है। तुम्हारे अस्तित्व के सम्बन्ध में तुम्हारा कोई सन्देह है क्या?

– मेरे अस्तित्व के सम्बन्ध में मुझे कोई सन्देह नहीं है।

महाराज – सन्देह नहीं है, कह रहे हो। किन्तु अभी तुम्हारा अस्तित्व क्या है, उसे विचार कर देखते-देखते सब शून्य हो जाता है। तुम्हारा अस्तित्व खोजते-खोजते कुछ भी नहीं मिलता है। यही है तुम्हारा स्वरूप।

– यदि कुछ नहीं मिलता है महाराज, तब तो ब्रह्म माने शून्य?

महाराज – शून्य, ठीक कहते हो। यह एक व्याख्या हुई। किन्तु वैसा नहीं है। वास्तव में वे शब्द के अतीत हैं।

– यह तो महाराज आप केवल श्रुति की, वेद की बात कह रहे हैं। किन्तु क्या यह युक्तिसंगत है? अर्थात् क्या युक्ति से कहा जाता है कि शब्दातीत वस्तु है?

महाराज – युक्ति वहाँ नहीं पहुँचा सकती। यही समस्या है। युक्ति से वहाँ कार्य नहीं होता। जहाँ जो वस्तु कार्य नहीं करती, वहाँ उसका प्रयोग करके क्या होगा?

– ओ ! तो हमलोग कहेंगे, ब्रह्म जो सिद्ध वस्तु है, अर्थात् सिद्धान्ती जो कह रहा है, यह भी सिद्धान्ती का कहना उचित नहीं है।

महाराज – नहीं, नहीं, सिद्धान्त नहीं। ब्रह्म स्वयंसिद्ध है।

– स्वयंसिद्ध वस्तु है ! किन्तु महाराज स्वयंसिद्ध वस्तु को यदि कोई पुन: सिद्ध करना चाहे, तब?

महाराज – ब्रह्म सर्वसिद्ध हैं। जो सर्व हैं, वे सन्देह के अतीत हैं। इसलिए उनके प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। वे सभी सन्देहों के अतीत हैं। तुम्हारे अपने सम्बन्ध में कोई सन्देह है क्या?

– सन्देह है महाराज।

महाराज – है क्या? तब तो हमलोग तुमको आचार्य बनाकर गलती किये हैं।

प्रश्न – महाराज ! तब शास्त्र की सीमा कहाँ है?

महाराज – शास्त्र से आदेश मिलेगा, किन्तु गन्तव्य स्थान में जाने पर उसका कोई वर्णन नहीं है। अशब्दम् इत्यादि।

– वेद से ही उसे जाना जायेगा या आचार्य की आवश्यकता है?

महाराज – वेद में ज्ञानावस्था की बात है। किन्तु आचार्य से सुनना होगा। सुनने से अधिक शक्ति मिलेगी। शास्त्र में केवल लिखा हुआ है। उसका अनुभव किसी को होता है कि नहीं, उसे आचार्य से जान लेना होगा।

– क्या श्रद्धा को प्राप्त किया जाता है?

महाराज – हाँ

– वेद में तो अनेक पथ हैं। उनमें से कौन-सा हमारे लिये उपयोगी है, उसे निर्धारित करने के लिए आचार्य की आवश्यकता होती है। ऐसा कहा जा सकता है क्या?

महाराज – हाँ। वैसा भी कह सकते हो।

प्रश्न – महाराज ! क्या मन-मुख एक करने का अर्थ है कि जो मन में आवे, उसे कह देना?

महाराज – यह एक प्रचलित बात है रे बाबा ! मन में एक बात और मुख से दूसरी बात है। मुख से कह रहा है – आप आये हैं, बड़ी प्रसन्नता हुई। मन में सोच रहा है – बेटा ! आया क्यों?

मुँह से कहूँगा, वही सोचूँगा, ऐसा नहीं क्या? दोनों को समान कर देना, ऐसा नहीं?

महाराज – मुख से जो कहेंगे, वही मन से सोचेंगे, यह तो उलटा हुआ। बल्कि मन पहले है। मुख तो मन के बिना कोई बात नहीं बोलता है। मन सभी इन्द्रियों को संचालित करता है। मुख एक कर्मेन्द्रिय है। उसको भी मन ही संचालित करता है।

– मन-मुख एक करने का यदि अर्थ हो – जो मन में आवे वही बोल देना, तब?

महाराज – तब लोग पागल कहेंगे। एक बार स्वामी शुद्धानन्द जी के क्या मन में आया, उन्होंने सबको लिख

कर भेज दिया – ''अचानक यदि नींद से उठकर देखो कि संसार में कोई प्राणी नहीं है, तुम अकेले हो, तब क्या करोगे?'' सब लोग चिन्तित हो गये। कोई कहा – पागल हो जाऊँगा। किसी ने कहा – पहले मनुष्य को खोजूँगा। उसके बाद कहाँ खाना है, खोजूँगा।

– आपको उन्होंने पूछा था क्या?

महाराज – अभी याद नहीं आ रहा है। मैंने ये कहानी सुनी थी। मायावती प्रबुद्ध भारत के सम्पादक थे स्वामी अशोकानन्द जी। उन्होंने कहा था – मैं पागल हो जाऊँगा। मान लो, भूत देखना। यदि सामने भूत आ जाय, तो क्या करूँगा, सोच नहीं पाता। मैं बहुत से भूतों की कहानी सुना हूँ। पहले अलौकिक रहस्य से सम्बन्धित बहुत-सी पत्रिकायें प्रकाशित होती थीं। मामा के घर में स्तूपाकार में ये सब पुस्तकें थीं। मैं पढ़ने लगा। अच्छा मनोरंजक लगता है और डर भी लगता है।

– आपको तो भय की कोई बात नहीं है।

महाराज – क्यों, बताओ तो?

– आप तो भूतेशानन्दजी हैं। (हँसी)

महाराज – उस समय तो नहीं हुआ था न ! **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४०० का शेष भाग

एकता की जानकारी प्राप्त की। शिवाजी ने छत्रसाल का मार्गदर्शन करते हुये कहा, 'अपने नेतृत्व में बुंदेलखण्ड में बुंदेलों को संगठित करके मुगलों का नाश कर डालो, हम मराठा लोग धर्म की रक्षा के लिए सदा ही आपके साथ हैं।' इस प्रकार छत्रसाल शिवाजी से प्रेरणा लेकर बुंदेलखण्ड की ओर लौट आये। स्वतंत्रता संग्राम में छत्रसाल ने बुंदेले नवयुवकों को शामिल कर एक छोटी-सी सेना बनाई। छत्रसाल ने अपना राज्य उत्तर में ग्वालियर से एरच और दक्षिण में मालवा तक, पश्चिम में नरवर से होकर पूर्व में हमीरपुर तक फैलाया था।

एक रूपवती स्त्री युवावस्था में छत्रसाल के सौन्दर्य, पराक्रम तथा यश-कीर्ति को देखकर उनसे कहने लगी, मेरी एक इच्छा है कि मुझे आपसे आपके समान शूरवीर पुत्र प्राप्त हो। छत्रसाल ने उत्तर दिया, माँ ! मैं आपका ही पुत्र हूँ और उस स्त्री के चरणों को सिर से स्पर्श किया। छत्रसाल ने आजीवन उसे माँ कहकर पुकारा, उसके लिए महल बनाया तथा पालन-पोषण का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लिया। यह दृष्टान्त छत्रसाल के चारित्र्य बल का निरूपण करता है।

छत्रसाल महान् बलशाली, निडर, महापराक्रमी, उदारचित तथा एक महान् शूरवीर थे। आज भी बुंदेलखण्ड के निवासी सुबह उठकर छत्रसाल के स्मरण में कहते हैं – ***छत्रसाल महाबली। करियो भली भली।। अर्थात् 'हे महाबली छत्रसाल हमारा कल्याण करें।'*** ○○○

पृष्ठ ४११ का शेष भाग

सुषुप्त-प्रलय-कालयोः तत्-विशेषं बुभुत्सोः सः कः नु स्यात् इति **कस्मिन् सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्ति इति।।४/१।।**

यहाँ (इस मंत्र में) इस प्रश्न का अर्थ यह है कि कार्य-करण-रूपी समूह किसमें प्रविलीन (एकीभूत) होता है। यह – उस विशेष वस्तु को जानने की इच्छावाले का प्रश्न है कि वह भला कौन है, जिसमें सभी स्थित हो जाते हैं? **(क्रमशः)**

हमें दूसरों से अवश्य सीखना होगा। जमीन में बीज बो दे, उसके लिए पर्याप्त मिट्टी, हवा और पानी की व्यवस्था करो; जब वह बीज अंकुरित होकर कालान्तर में एक विशाल वृक्ष के रूप में फैल जाता है, तब क्या वह मिट्टी बन जाता है, या हवा या पानी? नहीं, वह तो विशाल वृक्ष ही बनता है, मिट्टी, हवा और पानी से रस खींचकर वह अपनी प्रकृति के अनुसार एक महीरुह का रूप ही धारण करता है। उसी प्रकार तुम भी करो, औरों से उत्तम बातें सीखकर उन्नत बनो। जो सीखना नहीं चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है।

इस समय चाहिए गीता में भगवान ने जो कहा है प्रबल कर्मयोग, हृदय में अमित साहस, अपरिमित शक्ति। तभी तो देश में सब लोग जाग उठेंगे, नहीं तो जिस अन्धकार में तुम हो, उसी में वे भी रहेंगे।

– स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामकृष्ण-गीता (१५)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

न कुर्वन् स्थित एकाकी वाक्यालापादिकं हि सः।।
साधुः सदा समासीनः स्वध्यानधारणादिषु।।२६।।

– वे साधु उस कमरे में अन्य किसी से भी वार्तालाप इत्यादि न करते हुए हमेशा अपनी ध्यान-धारणा आदि में ही मग्न रहते थे।।२६।।

तमोव्याप्ता दिशोऽकस्मादेकता मेघ उत्थिते।।
पुनर्व्याचालयन्मेघान् झञ्झावातः कियत्परम्।।२७।।

– एक दिन अचानक बादल छा जाने पर चारों ओर अन्धेरा छा गया, कुछ क्षण पश्चात् एक तूफान बादलों को फिर से हटा ले गया।।२७।।

दृष्ट्वेदं बहिरागत्यालिन्दं तस्य गृहात्तदा।।
हासं हासं तथासाधुर्भृशं नृत्यं चकार सः ।।२८।।

– वे साधु देखकर अपने कमरे से बाहर निकलकर बरामदे में जोरो से हँसते-हँसते बहुत नृत्य करने लगे।।२८।।

अजिज्ञासत तं तर्हि देवस्तदवलोकयन्।।
कक्षास्थस्त्वं सदामौनः कस्माद् हृष्टोऽद्य नृत्यसि।।२९।।

– तब यह देखकर ठाकुरजी ने उनसे प्रश्न किया, तुम सर्वदा मौन होकर अपने कक्ष में रहते हो, किन्तु आज क्यों इतने आनन्द से नृत्य कर रहे हो।।२९।।

साधुरुवाच

प्रथमं निर्मलाकाशोऽतोमेघात्तमसावृतः।।
एवं हि जगतो माया निरभ्रः पूर्ववत् पुनः।।३०।।
।।ॐ इति श्रीरामकृष्णगीतासु माया नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तम्।।

– साधु कहने लगे – ''संसार की माया ऐसी ही है'' पहले निर्मल आकाश, उसके बाद एकाएक मेघ से अँधेरा छा गया एवं फिर से कुछ क्षण पश्चात् पहले की भाँति हो गया।।३०।। **(क्रमशः)**

।।ॐ इति श्रीरामकृष्णगीता में ईश्वर नामक तृतीय अध्याय समाप्त।।

मेरी माँ धरती की माटी

सविता दूबे, उड़िसा

तुम्हें मैं गीत सुनाऊँ रे, माँ से तुम्हें मिलाऊँ रे ।
मेरी माँ धरती की माटी, सोंधा-सोंधा प्यार लुटाती,
इस मिट्टी की रोली अपने शीश लगाऊँ रे । तुम्हें ...
यहाँ कबीरा लिए मंजिरा ढाई आखर गाए,
यहाँ बावरी मीरा विष को पीकर भी मुस्काए ।
माखन वाला चोर यहीं है, राधा का चितचोर यहीं है ।
बंशी लाती भोर यहाँ है, गोपालों का शोर यहाँ है ।
गोपालों के माखन जैसे दिल दिखलाऊँ रे । तुम्हें ...
रात-रात भर आल्हा जागे, यहाँ जगी है कजरी,
यह है मेरी देश की मैया, है अमृत की गगरी,

यहाँ मशीने मंत्र सुनातीं, ये नहरें रामायण गातीं ।
मीलें यहाँ गीता पढ़ जातीं, फसलें भी गजलें दोहराती ।
यह मिट्टी है या ममता है कह ना पाऊँ रे ।। तुम्हें ...
केरल घायल होता है, तो रोता है कश्मीर ।
असम दुखी हो, तो होती है महाराष्ट्र को पीर ।
ऐसे हैं भारतवाले, मन से उजले तन से काले ।
हर बेबस को गले लगा ले, मन इनके अमृत के प्याले ।
इनके लिये जीऊँ या इन पर ही मर जाऊँ रे ।
तुम्हें मैं गीत सुनाऊँ रे, माँ से तुम्हें मिलाऊँ रे ।।

भारतीय और पाश्चात्य मनीषियों की दृष्टि में मन का स्वरूप

मीनल जोशी, नागपुर

हम हमेशा कहते हैं, आज मेरा मन अस्वस्थ है अथवा प्रसन्न है, इत्यादि। हमारे सभी व्यवहार में मन का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। हमारे अधिकांश कार्य मानसिक स्तर पर होते हैं। अच्छा-बुरा, सुख-दुख, इच्छा-आकांक्षा सभी मन में उत्पन्न होते रहते हैं। इस मन के तरंगों पर हम नाचते रहते हैं। कभी इसी मन में प्रश्न उठता है 'यह मन है क्या?' सामान्य दृष्टि से उत्तर सरल है – जिसमें विचार, भाव-भावनाएँ होती हैं, जो चंचल है, वह है मन ! आइए, इस मन को पौर्वात्य तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करते हैं।

'मनोविज्ञान' शब्द से हम सभी परिचित हैं। पूर्ववर्ती काल में पाश्चात्य तत्त्वज्ञान में मन और आत्मा एक ही माने जाते थे। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन होने लगा। मानवीय क्रियाओं का मूल मन की अवचेतनावस्था में होता है। यह जानकर मनुष्य की क्रियाओं का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन होने लगा। इसी अध्ययन के परिणामस्वरूप 'मनोविज्ञान' का उदय हुआ। १९६० के दशक में क्रियाओं के पीछे की प्रेरणाओं के वैज्ञानिक स्तर पर स्वीकार किया गया। अत: क्रिया और उसके पीछे की संवेदनाओं का अध्ययन करनेवाला ग्रन्थ 'मनोविज्ञान' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। संवेदनाओं को समझने के लिए क्रिया और उससे सम्बन्धित जानकारी का वस्तुनिष्ठता के आधार पर प्रयोगशाला में परीक्षण किया गया। इस प्रकार वस्तुनिष्ठ, यथार्थ जानकारी का विश्लेषण कर प्रयोगों (मनुष्य तथा प्राणियों) के आधार पर सिद्धान्त प्रस्थापित करनेवाला शास्त्र बन गया। पाश्चात्य मनोविज्ञान में क्रिया की अबोध प्रेरणाएँ-भावनाएँ, प्रेरक, बुद्धि, स्मृति, संवेदना आदि घटकों का अध्ययन कर उसकी परिगणना की गयी। आज जीवन के अनेक क्षेत्रों में इसकी मौलिक उपयोगिता दिखाई देती है। उदाहरणार्थ शिक्षा उद्योग, व्यवसाय चयन इत्यादि। अत: आज मनोविज्ञान की बालमनोविज्ञान, शैक्षणिक मनोविज्ञान आदि विविध शाखाएँ निर्मित हुई हैं।

अब हम मन का स्वरूप जानने का प्रयास करेंगे। इस ग्रीक तत्त्ववेत्ता प्लेटो के अनुसार मन की तीन वृत्तियाँ होती हैं – १. बोधात्मक २. वेदनात्मक/भावात्मक ३. वासनात्मक। फ्रॉइड ने चेतना के तीन स्तर बताया है – १. कामतत्त्व २. अहं ३. परं अहं। उनके मतानुसार 'परं अहम्' कामतत्त्व और अहंकार को नियन्त्रित करता है। उनके सिद्धान्त के अनुसार काम और अहंकार की भावनाओं को दबाने से वे भावनाएँ अवचेतन मन में रहती हैं। इसके कारण मानसिक रोग होते हैं। इसलिए भावनाओं का दमन नहीं करना चाहिए। वरन् उनका उदात्तीकरण अथवा परिशोधन करना चाहिए।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक 'कार्ल युंग' के मतों ने पाश्चात्य मनोविज्ञान में नए विचारों का संवर्धन किया। उन्होंने विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान की स्थापना की। 'कार्ल युंग' ने मन के तीन स्तर बताये - १. चेतन मन – (अहं) स्मरण, विचार, भावना यह मन का ऊपरी है। २. अवचेतन मन – अबोध - इच्छा, भीति, स्वप्न, स्मृति यह मन का अन्त:स्तर है ३. सामूहिक अचेतन – अचेतन प्रतीक और सांस्कृतिक ज्ञान। उन्होंने व्यक्तित्व के भी अनेक प्रकार बताये।

अब हम मन के विषय में भारतीय दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करते हैं। भारत में पाश्चात्य मनोविज्ञान के समान तत्त्वज्ञान या दर्शन से भिन्न मनोविज्ञान की पृथक शाखा विकसित नहीं हुई। वह हमेशा ही तत्त्वज्ञान या दर्शन का अभिन्न अंग रहा है और आज भी है। भारतीय दर्शन में मात्र बाहरी साधनों (क्रियाओं, प्रयोगशाला इत्यादि) को महत्त्व न देते हुए आन्तरिक निरीक्षण और अनुभवों के आधार पर मन को जानने का प्रयास रहा। क्रियाओं का अध्ययन मन को जानने के दृष्टिकोण से हुआ। भारतीय शास्त्रों की

दृष्टि से मन जड़ है, अचेतन है, निर्जीव है। इस अचेतन मन का चेतन रूप में भासमान होना उसके पीछे विद्यमान चेतन तत्त्व के कारण है। भारतीय दर्शन के इस दृष्टिकोण के कारण हम उस शुद्ध चैतन्य का साक्षात् करना, उस में स्थित होना, अपना ध्येय मानते हैं। भारतीय शास्त्रों में इस ध्येय-प्राप्ति के लिए मन के निरोध करने पर जोर दिया गया है। भारतीय दर्शन में 'भावनाओं के दमन' की संकल्पना नहीं है। भारतीय शास्त्रों में 'भावनाओं के नियन्त्रण' की संकल्पना है। जिसे शास्त्रों में 'शम-दम' साधन कहा गया है। भारतीय समाजशास्त्रियों ने इसके लिए गहन चिन्तन और मानव मन के अनुभवों के आधार पर सुन्दर व्यवस्था बनाई है। जिसे हम 'आश्रम व्यवस्था' – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आश्रम के नाम से जानते हैं। दर्शनाधारित भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्वयं की इच्छा-वासना पूर्ति के साथ समाज का विचार अपेक्षित है। इस व्यवस्था में 'मैं' – अहं से अधिक 'हम'-वयं का विचार है। किन्तु पाश्चात्य मनोविज्ञान में सामान्य मनुष्य की भावनाओं का उदात्तीकरण करना, सृजनशीलता को परिपोषित करना, आत्मनिरीक्षण के माध्यम से समाज जीवन के साथ समायोजन करना, यह ध्येय माना गया है।

भारतीय शास्त्रों में मन के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ पातंजल योगसूत्र, तैत्तिरीय उपनिषद् आदि ग्रन्थ। हमारा संत साहित्य भी इसका प्रमाण है। भारतीय तत्त्वज्ञान के वेदान्त दर्शन में अन्तःकरण के उसके कार्य के अनुरूप चार प्रकार कहे गए हैं। वे हैं – १. मन २. बुद्धि ३. चित्त ४. अहंकार। शास्त्रों में इनकी सुन्दर व्याख्यायें दी गई हैं। १. **संकल्पविकल्पात्मकं मनः** – एक क्षण में कुछ सोचना और दूसरे क्षण कुछ दूसरा सोचना, ऐसा मन का द्वंद्वात्मक स्वरूप है। २. **निश्चयात्मिका बुद्धिः** – निश्चय करनेवाली अन्तःकरण वृत्ति को बुद्धि कहा गया है। ३. **अनुसंधानात्मिका अन्तःकरणवृत्तिः** को चित्त कहा गया है। हमारी स्मृतियों का संग्रह इसमें होता है। ४. **अभिमानात्मिकान्तःकरणवृत्तिः** को अहंकार कहा गया है। यहाँ जीव को 'मैं' का अनुभव होता है। पतंजलि मुनि के योगशास्त्र में चित्त की वृत्तियों का सविस्तार वर्णन है। इसमें वृत्तियों के क्लिष्ट और अक्लिष्ट ऐसे दो भाग कर उन में प्रमाण, विपर्यय, अविद्या, अस्मिता... आदि दस वृत्तियों का उनके सूक्ष्म कार्यों के अनुसार वर्णन किया गया है। पतंजलि योगसूत्र तथा अन्य ग्रन्थों में इनके निरोध के अनेक उपाय बताये गए हैं। पाश्चात्य मनोविज्ञान में आज भी इतना सूक्ष्म अध्ययन नहीं हुआ है। भारतीय दर्शन में क्रिया की प्रेरणाओं का भी सूक्ष्म अध्ययन किया गया है।

भारतीय तत्त्वज्ञान के वेदान्त दर्शन में चेतना के १. जाग्रत २. स्वप्न ३. सुषुप्ति तीन स्तर बताये गए हैं। मनुष्य की चेतनशक्ति जब दृश्य जगत् का अनुभव करती है, तब उसे 'जाग्रत अवस्था' कहा जाता है। निद्रा में चलनेवाली मानसिक क्रियाओं को 'स्वप्न अवस्था' कहा गया है। गहरी निद्रा में अज्ञान के कारण जीव को किसी भी विषय का अनुभव नहीं होता। इस अवस्था को 'सुषुप्ति' कहा गया है। इन तीन अवस्थाओं से परे 'तुरीय' अथवा 'चतुर्थ' इस संज्ञा से शुद्ध चैतन्य को निर्देशित किया गया है। भारतीय तत्त्वज्ञान में पुरुष/आत्मा/शुद्ध चैतन्य मन से पृथक, किन्तु मन को प्रकाशित करनेवाला है। पाश्चात्य मनोविज्ञान में 'चैतन्य' की संकल्पना मानसिक क्रिया अथवा संवेदना के रूप में वर्णित है।

मानव समुदाय का प्रयास विभिन्न शास्त्रों, माध्यमों से अपने आप को पहचानने का रहा है। हम अपने आप को – 'मैं' को जानना चाहते हैं। हम दैनन्दिन जीवन में मेरा मन, तुम्हारा मन, हम सबका मन आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसा बोलते समय हम व्यष्टि तथा समष्टि मन का निर्देश करते हैं।

हमने उपर कार्ल युंग के मनोसंरचना के तीन स्तरों में व्यक्तिगत तथा सामूहिक मन को देखा है। भारतीय दर्शन के वेदान्त दर्शन में १. जाग्रत २. स्वप्न ३. सुषुप्ति, इन तीन स्तरों की व्यष्टि और समष्टि चैतन्य की संकल्पना वर्णित है। इनको विश्व, तैजस्, प्राज्ञ आदि संज्ञाएँ दी गयी हैं। ये संकल्पनाएँ सूक्ष्म और व्यापक हैं।

व्यक्तिगत तथा सामूहिक मन का एक-दूसरे पर सकारात्मक अथवा नकारात्मक परिणाम होता है। अतः भारतीय दर्शन केवल मनुष्य जाति का ही नहीं, समग्र सृष्टि के चेतन-अचेतन पदार्थ, प्राणी, जीव-जन्तुओं के समूह का, उनके आपस के सम्बन्धों का विचार करता है। मनुष्य जाति के जीवन का परिपूर्ण दृष्टि से चिन्तन भारतीय दर्शन में है। भारतीय दर्शन अत्यन्त व्यापक है। हमारी संस्कृति

शेष भाग पृष्ठ ४२५ पर

कृपा करे उद्धार

भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश'

कृपा करुणा प्रत्यक्ष फल है। पहले करुणा तब कृपा। जिसके हृत्कोष में सच्ची करुणा है, वही कृपा कर सकता है, करता है। करुणा के सागर से निकली हुई कृपा रूपी मोती अनमोल है। जब अन्त:करण, हृदय करुणा, दया से द्रवित होता है, तब कृपा फलित होती है। इस संसार के समस्त कार्यकलाप करुणा और कृपा से अनुप्राणित हैं। हमारा मानवीय जीवन तो स्वयं परमात्मा की करुणाजन्य कृपा का स्वत:प्रमाण है। वर्तमान युग के महर्षि गोस्वामी तुलसीदास ने इसी तथ्य का उद्‌घाटन करते हुए 'श्रीरामचरितमानस' में कहा है –

कबहुक करि करुना नर देही।
देत ईस बिन हेतु सनेही।।

अर्थात् परमात्मा जब देखता है कि चौरासी लाख योनियों में भटकता, तड़पता जीवात्मा अतीव व्याकुल-व्यथित है और अपने दुखमुक्ति का कोई भी उपाय नहीं कर सकता, तब जीवात्मा के बिना पुरुषार्थ, प्रयास किये भी स्वेच्छया या स्नेह करनेवाला करुणावतार परमात्मा अकारण करुणा, दया करके जीवात्मा को मानव योनि में जन्म प्रदान कर देता है, ताकि वह अपनी अधोगति-अपगति के उद्धार के लिये अपेक्षित विधान-संधान करके आत्मोद्धार का द्वार अनावृत कर सके। इसके लिये वह परमात्मा की कृपा पाने हेतु उसकी शरण में जाता है। परमात्मा उसकी आर्तपुकार या दया से द्रवित होकर कृपा करता है और मानव की अभीष्ट सिद्धि होती है। यह कृपा दया से द्रवित अन्त:करण का साक्षात् फल है।

वस्तुत: कृपा ही किसी अपगति-दुर्गति से मनुष्य का उद्धार करती है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में कृपा के एक पुण्यप्रद प्रसंग का प्रशस्त निरूपण किया है। महर्षि विश्वामित्र ने बताया है कि –

गौतम-नारी-रूप बस उपला देह धरि धीर।
चरण कमल रज चाहती कृपा करहु रघुबीर।।

ऋषि पत्नी की अधोगति–अपगति को सुन-देखकर करुणासिंधु श्रीराम का हृदय दया-द्रवित हो गया और इस रघुवीर श्रीराम ने अधीरतापूर्वक कृपा करके, ज्यों ही अपने चरण कमल से शिला का स्पर्श किया, त्यों ही शिला कमनीय कोमल कामिनी के रूप में परिवर्तित होकर करांजलि सहित प्रभु राम की वन्दना-अभिनन्दना करने लगी और वह अहल्या थी। महर्षि गौतम ने एक विशेष कारणवश पत्नी अहल्या को शापित करते हुए कहा था, तू शिलामयी होकर शापमुक्ति की इच्छा सहित परमात्मा श्रीराम के दर्शन की प्रतीक्षा करती रहे। तदनुसार अहल्या परमात्मा श्रीराम की कृपापात्र बनी। यह करुणारूपी कृपा का पुष्ट प्रमाण है। वास्तव में करुणा फूल है और कृपा फल है।

सन्तों-शास्त्रों ने कृपा के तीन भेद बतायें हैं – १. निज कृपा, २. गुरु कृपा और ३. प्रभु कृपा। किसी भी अपगति दुर्गति से पीड़ित व्यक्ति, जीवात्मा जब कष्ट एवं दण्ड से मुक्त होने के लिये हृदय की गहराई से इच्छा-कामना-चेष्टा करता है, तो वह निजकृपा बन जाती है। जब मनुष्य मुक्ति की कामना से किसी ज्ञानी गुरु के सम्पर्क में आता है, तब ज्ञानी गुरु कृपा करके मुक्ति-मार्ग का दर्शन कराते हुए समग्र करुणा एवं कृपासमर्थ परमात्मा की ओर मोड़ देते हैं, तो वह गुरु कृपा होती है। जब वह साधक, जीवात्मा परमात्मा से पुकार, प्रार्थना करता है। उसकी प्रार्थनापूर्ण पुकार पर परमात्मा उसे अपेक्षित मुक्ति, सिद्धियाँ प्रदान कर अपने कृपा-प्रसाद से प्रसादित करता है, तब वह प्रभु-कृपा होती है। यही जीवात्मा का परमात्मा के प्रति समर्पण एवं शरणागति भी है।

वस्तुत: कृपा परमात्मा का परम प्रसाद है, जिससे लोक सुखी, सुरक्षित एवं सुस्थित होता है। सम्पूर्ण सृष्टि में करुणा और कृपा का ही वितान है। करुणा एवं कृपा ही मानवता को पुष्ट तथा देवत्व को तुष्ट करती है। सच्चिदानन्द परमात्मा का ही अंश जीवात्मा भी अपनी समर्पित साधना से संसार-व्यवहार में सामर्थ्यवान बन जाता है, तब वह भी परमात्मा की कृपा से ही संसार, समाज के अन्य असमर्थ लोगों को अपनी करुणाजन्य कृपा का प्रसाद प्रदान करता है, जिससे दुखी-दरिद्र जनों का दुख-दुर्गति से उद्धार होता है, किन्तु इसके मूल में परमात्मा की ही कृपा का सम्बन्ध निहित होता है। करुणा जब तक कृपा रूप में परिणत नहीं होती, तब तक

वह बन्ध्या ही कही जायेगी। मार्ग में आहत घायल पड़े व्यक्ति, भयंकर व्याधि से तड़पते रोगी, भूख-प्यास से पीड़ित इत्यादि को देखकर केवल दयाभाव प्रदर्शित करना, तब तक सफल सार्थक नहीं है, जब तक उसकी कष्टमुक्ति के लिए आतुरतापूर्वक औषधि, आहार इत्यादि उपचार न किया जाए। यह औषध-आहार इत्यादि प्रेमपूर्ण उपचार ही करुणार्द्र कृपा का स्वत:प्रमाण है। वास्तव में करुणा और कृपा के मूल में मानवीय या दैवी पावन भावना ही विद्यमान है और यही मानवता (मानवीय संवेदना) मानव को देवत्व ही नहीं, ईश्वरत्व भी प्रदान करती है। जिस दिन संसार करुणा और कृपाशून्य हो जायेगा, उस दिन यह सम्पूर्ण संसार भीषण श्मशान के समान भयंकर हो जायेगा। वस्तुत: मानवता, देवत्व एवं ईश्वरत्व का मूल तत्त्व करुणापूर्ण कृपा ही है। ऐसा कौन है, जो कृपा नहीं चाहता। मैं तो सभी का कृपाभिलाषी हूँ।

भौतिक विज्ञान की प्रधानता वाले इस वर्तमान विश्व में मानव-लोक बहुविध सुख-साधनों के बावजूद अनेक आधियों-व्याधियों एवं उपाधियों से ग्रस्त-त्रस्त एवं अस्त-व्यस्त होकर दुख-दुर्गति से मुक्ति हेतु छटपटा रहा है। भौतिकता की मरुभूमि में वह सच्ची सुख-शान्ति के सन्धान में चारों ओर भ्रम-भटक रहा है, किन्तु मरू-मरीचिका में भटकते प्यासे मृग की भाँति, वह और भी अधिकाधिक व्याकुल-व्यथित एवं श्रमित हो रहा है। वह-जहाँ भी जाता है, वहीं छलना का शिकार हो रहा है। ऐसे रूखे-सूखे, निर्मम एवं क्रूर स्वार्थपरायण विश्व-वातावरण में भी कई संत-महात्मा एवं महापुरुष अपने-अपने सामर्थ्य एवं स्तर से यथासम्भव लोकोपकार एवं उपचार करते रहे हैं और कर रहे हैं, जिसमें विश्वप्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन है। इस संस्था के आदर्श भगवान श्रीरामकृष्ण देव हैं, जिनके सान्निध्य में नरेन्द्र की लोकप्रथित स्वामी विवेकानन्द के रूप में परिणत हुई। मानव-दुख से दुखित एवं दयार्द्र करुणाविगलित होकर ही स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु के सन्देश 'जीव की शिवभाव से सेवा' का प्रवर्तन एवं विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार किया। रामकृष्ण मिशन की स्थापना भी करुणा-कृपा का साक्षात् प्रमाण है। ○○○

पृष्ठ ४२३ का शेष भाग

का आदर्श वाक्य है 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ! पाश्चात्य मनोविज्ञान में ऐसी व्यापकता नहीं दिखती। हम कह सकते हैं, वह अत्यधिक व्यक्ति-केन्द्रित है। आधुनिक काल में मानवतावादी मनोवैज्ञानिक गेसाल्ट ने भावना, संवेदना आदि का समग्रता से विचार होना चाहिए, ऐसा मत प्रदर्शित किया है। जिस पर पाश्चात्य देशों में चिन्तन और कार्य होना आवश्यक है। भारतीय दर्शन सर्वदा सबके विकास की प्रार्थना करते आया है – 'सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ...।' सर्वे भवन्तु सुखिन: ..।'

आज मन को पौर्वात्य तथा पाश्चात्त्य दृष्टिकोण से समझते हुए हमें अखिल सृष्टि के कल्याण के मार्ग पर ही अग्रसर होना होगा। ○○○

सन्दर्भ-ग्रन्थ : १. कार्ल गुस्ताव युंग–विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान, लेखक–भवानी शंकर उपाध्याय २. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान–लेखक–डी.एन. श्रीवास्तव ३. मनोविज्ञान–लेखक–पं.जगदानन्द पाण्डेय ४. मनोविज्ञान का इतिहास, खण्ड-२ लेखक–जे.डी. शर्मा

तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है, आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान बनाना होगा।

तुम लोगों में संगठन की शक्ति का एकदम अभाव है। वही अभाव सब अनर्थों का मूल है। मिल-जुलकर कार्य करने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। संगठन के लिए सबसे पहले आज्ञा-पालन की आवश्यकता है।

– स्वामी विवेकानन्द

साधुओं के पावन प्रसंग (४५)

स्वामी भास्करानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१९७७ ई. में मैं बुद्ध महाराज का दर्शन करने काशी गया और उनकी बातें टेप रिकोर्डर में रिकॉर्ड किया।

०३/१०/१९७७, अम्बिका धाम, काशी

बुद्ध महाराज ने कहा, ''एक दिन विज्ञान महाराज ने मुझसे कहा, 'देखो, राजा महाराज के साथ सोच-समझकर बातें करना। वे हँसी-मजाक करते हैं। मेरे मुँह से न कहने वाली बात अगर निकल जाये, तो वे गम्भीर होकर बातें करना बन्द कर देते हैं और यह मेरे लिए बहुत कष्टदायी होता है। मेरे प्रति उनका प्रेम-स्नेह असीम है।'

''देखो, महाराज कहते थे कि पहले साधु-जीवन गढ़ लो। कई साधु अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिए धनियों के पीछे-पीछे मारे-मारे फिरते हैं, जिससे उनका वैराग्य नष्ट हो जाता है। हमारा कार्य गरीबों के साथ है और धनी भक्त उस कार्य में सहायता करते हैं।

''हमलोग महापुरुष महाराज को प्रतिदिन प्रातः प्रणाम करने जाते, तो वे हम सभी का कुशल-मंगल तथा जप-ध्यान कैसा चल रहा है, पूछते थे। एक बार काली पूजा के समय डॉक्टर कांजीलाल की पुत्री मठ में रहना चाहती थी। इस पर महापुरुष महाराज ने कहा, 'नहीं, रात को मठ में महिलाएँ नहीं रहेंगी।' इन सब बातों में ठाकुर की सन्तान बहुत कड़े थे।''

बुद्ध महाराज ने कहा, ''देखो, जन्मजन्मान्तर का संस्कार हमारे मन को माया की ओर खींच कर ले जा रहा है। महिलाओं के प्रति मातृबुद्धि लाने के लिए साधन-भजन की बहुत आवश्यकता है।'' तदुपरान्त बुद्ध महाराज ने **स्वामीजी के शिवस्तोत्रम्** से यह तीन श्लोक पढ़ कर मुझे सुनाया :

वहति विपुलवातः पूर्वसंस्काररूपः
विदलति बलवृन्दं घूर्णितेवोर्मिमाला।
प्रचलति खलु युग्मं युष्मदस्मत्प्रतीतम्
अतिविकलितरूपं नौमि चित्तं शिवस्थम्।।३।।

अर्थात् जिनमें (समस्त भूतकाल की इच्छाओं-वासनाओं तथा कर्मों के संचित प्रभाव का) पूर्वसंस्काररूपी झंझावात प्रवाहित होते हुए बलपूर्वक प्रचण्ड मन्थन द्वारा घूर्णायमान तरंगसमूहों (में परिवर्तित हुए जल) के समान, अन्तर्शक्तियों को विलोड़ित कर रहा है, जिनमें आप तथा मैं रूपी द्वैतयुक्तचेतना द्वन्द्व सतत कीड़ारत हैं, उस अतिविक्षुब्ध परन्तु (शान्ति के आधार) शिव में संस्थापित चित्त की मैं वन्दना करता हूँ।)

जनकजनितभावो वृत्तयः संस्कृतांश्च
अगणनबहुरूपा यत्र चैको यथार्थः।
शमितविकृतिवाते यत्र नान्तर्बहिश्च
तमहह हरमीडे चित्तवृत्तेर्निरोधम्।।४।।

अर्थात् कार्यकारण (या निर्माता तथा निर्मिति के द्वैत भाव) तथा तरह-तरह की असंख्य निर्मल वृत्तियाँ रहने पर भी जहाँ एक ही यथार्थ वस्तु है, विकार रूपी वायु शान्त होने पर जहाँ भीतर तथा बाहर का भेद नहीं रहता है; उस चित्तवृत्ति के निरोधरूपी महादेव का मैं स्तवन करता हूँ।

गलिततिमिरमालः शुभ्रतेजःप्रकाशः
धवलकमलशोभो ज्ञानपुञ्जाट्टहासः।
यमिजनहृदिगम्यो निष्कलो ध्यायमानः
प्रणतमवतु मां सः मानसो राजहंसः।।५।।

अर्थात् जिनसे अज्ञानरूपी अन्धकार-राशि नष्ट हो गई है, जो शुभ्रतेजोमय प्रकाशस्वरूप हैं, जो श्वेत कमल के समान शोभायमान हैं, जिनका अट्टहास तेजोमय ज्ञानसमूह का वितरण करता है, जिन्हें यमादि की साधना में प्रवीण संयमी योगीजन अखण्ड ध्यानपूर्वक हृदय में अनुभूत करते हैं, वे शिव मेरे द्वारा ध्यात होकर मेरे मनरूपी मानसरोवर में राजहंस के समान विराजमान होकर मुझ प्रणत (दास) की रक्षा करें।

महाराज ने कहा, ''हमलोग उस समय मठ में थे। हरिप्रसन्न महाराज बीच-बीच में इलाहाबाद से बेलूड़ मठ में स्वामीजी के मन्दिर के निर्माण-कार्य की देख-रेख हेतु आते थे। वे बहुत गम्भीर स्वभाव के थे। राजा महाराज उनको **'गुप्त ब्रह्मज्ञानी'** कहते थे। मैं उस समय मठ-ऑफिस में कार्य करता था और समय मिलने पर विज्ञान महाराज की सेवा करता था। मैं उनका भोजन ले जाता था। वे बहुत खा सकते थे।

''स्वामीजी का मन्दिर धीरे-धीरे निर्मित हुआ है। रुपया नहीं था। जब रुपया का बन्दोबस्त होता, विज्ञान महाराज को समाचार भेजा जाता। वे कई बार इलाहाबाद से आये थे। स्वामीजी के मन्दिर के सामने कुर्सी पर बैठकर बहुत एकाग्रता से कार्य देखते रहते थे।

''मुझे स्मरण है – एक दिन विज्ञान महाराज को नाश्ता दे रहा हूँ। राजा महाराज ने मुझसे कहा, 'उसे क्या दे रहे हो? वह भोजनप्रिय है। मेरे कमरे में जाओ। वहाँ अलमारी से सन्देश तथा अन्य मिठाई, फल लाकर उसे दो।' मैंने वैसा ही किया। उस समय मठ की आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। प्रात:काल केवल मुरी या थोड़ा-सा पावरोटी और चाय मिलता था। रात्रि में एक सब्जी, रोटी और थोड़ा-सा दूध रहता था।

''अभेदानन्दजी जब अमेरिका से मठ में आये, तब उस समय परेश महाराज (स्वामी अमृतेश्वरानन्द) उनके सेवक थे। कई वर्षों तक अमेरिका में रहने के कारण मठ के इस प्रकार के भोजन से उन्हें असुविधा होने लगी। किन्तु वे हमारे संग बैठकर भोजन करते थे और सामंजस्य बना लिया था।

''एक दिन मठ के पूर्व बरामदे में हमलोग महाराज के सामने बैठे हुए थे। हरिप्रसन्न महाराज भी थे। सुधीर महाराज ने आकर महाराज से कहा, ''महाराज, मैंने दो व्यक्ति को रंगून जाने के लिए कहा था। किन्तु वे लोग जाना नहीं चाहते। आप यदि कहेंगे, तो वे लोग जायेंगे।'' महाराज ने कहा, ''संघ का कार्य ठाकुर का कार्य है। तुमलोग ठाकुर का कार्य करने के लिए आये हुए हो। ठीक-ठीक साधन-भजन नहीं कर सकने से निष्काम-कर्म नहीं कर पाओगे। ठाकुर का कार्य कामना-वासना और अहंकार को दबाकर रखता है। बारह आना मन ठाकुर में रखकर चार आना मन से यदि कार्य करोगे, तो वही पर्याप्त होगा। ठीक तरह से साधन-भजन करने से कर्म में प्रवृति होगी और समझ में आयेगा कि ठाकुर का कार्य कर रहा हूँ।' अभी संन्यासीगण प्रात: एक घण्टा और सन्ध्या एक घण्टा साधन-भजन करने के लिए बैठते हैं। किन्तु महाराज संन्यासियों को और अधिक समय तक साधन-भजन करने के लिए कहते थे।

''महापुरुष महाराज सन्ध्या समय मठ के आम वृक्ष के नीचे बैठे रहते थे और यह देखते कि संन्यासीगण सन्ध्या समय ठाकुर मन्दिर में जप-ध्यान करने के लिए जा रहे हैं कि नहीं।

''मैंने राजा महाराज से दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने मुझे एक वर्ष तक गायत्री मन्त्र का जप करने के लिए कहा और माला भी दी। तदुपरान्त कहा, 'मैं भुवनेश्वर से वापस आने के पश्चात् तुमको दीक्षा दूँगा।' तदनन्तर मठ

में वापस आने के बाद उन्होंने मुझसे कहा, 'तुमने हरिप्रसन्न की सेवा की है, उसके पास से ही दीक्षा लो।' मैंने कहा, 'नहीं महाराज। मैं आपसे ही दीक्षा लेना चाहता हूँ।' उस समय उन्होंने कहा, 'तब तुम पेशन (हरिप्रसन्न) से अनुशंसा लेकर आओ।' उन्होंने पुन: मुझे महाराज के पास भेज दिया। महाराज दीक्षा के बिषय में बहुत टालमटोल करते थे।

''दीक्षा के उपरान्त उन्होंने मुझसे कहा था, 'देखो, बहुत-से उपदेशों का पालन नहीं करना पड़ेगा। सत्य और ब्रह्मचर्य, इन दोनों का पालन करना ही पर्याप्त होगा।

''पेतापुरी नामक एक लड़का आया था। महाराज ने उसको दीक्षा दी थी और उसको प्रेम करते थे। उसकी तपस्या करने की बहुत इच्छा थी। महाराज के महासमाधि के पश्चात् मैं तीन महीने तक भुवनेश्वर में था। वहाँ पर उस समय स्वामी आत्मानन्द और स्वामी अचलानन्द थे। पेतापुरी आश्रम में प्रसाद ग्रहण करके बाहर एक मन्दिर में जाकर तपस्या करता था। अन्त में वह पैदल काशी चला गया। अधिक तपस्या करने से उसका दिमान खराब हो गया। काशी आश्रम में आकर वह उत्पात मचाता था। वह हाथ में एक लाठी लेकर आता। जो भी हो, संन्यासीवृन्द उसको शान्त करने का प्रयास करते। वह कहता, 'ये लोग गाना गाते है, माँ ! मुझे पागल कर दो। अब जब मैं पागल हो गया हूँ, तब ये लोग मुझे मारने के लिए आते है।' जोर देकर बहुत अधिक जप-ध्यान करने से कई लोगों का दिमाग खराब हो जाता है।

''महापुरुष महाराज का बहुत स्नेह और प्रेम मुझे मिला है। एक दिन सन्ध्या समय मैं और दो ब्रह्मचारी बेलूड़ ग्राम में एक भक्त के घर गये। उनके यहाँ आम के कई पेड़ थे। उन्होंने हमें आम खाने के लिए निमन्त्रित किया था। इधर सन्ध्या हो गई। स्वामीजी के कमरे में दीया जलाने का सेवा-कार्य मेरे ऊपर था। किन्तु उस दिन दीया नहीं देखकर महापुरुष महाराज ने खोज-खबर लेकर जाना कि मैंने दीया नहीं जलाया। तब उन्होंने एक अन्य संन्यासी को दीया जलाने के लिए कहा। इस ओर, जब मैं मठ में आया, तब भाव महाराज (स्वामी रामेश्वरानन्द) ने कहा, 'जाओ, आज तुम्हारे भाग्य में कुछ है। तुमको मठ से विदाई कर देंगे।' महापुरुष महाराज के पास जाने पर उन्होंने मुझसे कहा, 'देखो, तुम अभी नये आये हो। ठाकुर-भगवान के कार्य में उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। तुमने आज स्वामीजी के घर में दीया नहीं जलाया। महापराध किया है और यदि इस प्रकार का हुआ, तो तुमको घर भेज देंगे। इन कार्यों को करने से ही चित्तशुद्ध और भक्तिलाभ होगा।' तदुपरान्त इस विषय में उन्होंने और कुछ नहीं कहा।

''और एक बार हमारे गाँव का एक लड़का मठ में आया था। महापुरुष महाराज ने उसको मठ में नहीं रहने दिया। मैंने भाव महाराज से सूचना पाकर बेलूड़ के रक्ततला में उसको खोज लिया और रात्रि के नौ बजे उसे मठ में ले आया। उसके भोजन और रहने की व्यवस्था की। अगले दिन प्रात:समय महापुरुष महाराज को सब बताया। उन्होंने कहा, 'ठीक किया। रात्रि में भोजन दिया है तो? जितने दिन रहेगा, उतने दिन उसकी देखभाल करना।'

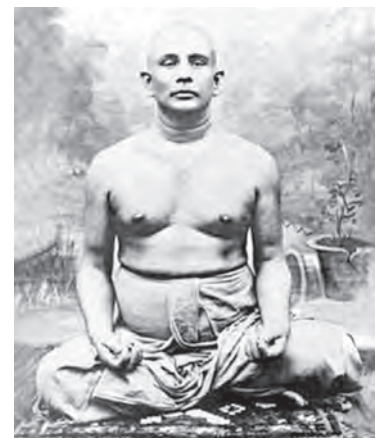

''हरि महाराज का दर्शन नहीं किया। शरत् महाराज का कई बार दर्शन किया हूँ। वे मठ में न्यासी-सभा में आते थे। सभा के उपरान्त वे वहीं पर बैठकर अधिक समय तक ध्यान करते थे। मैं उस समय मिशन ऑफिस में कार्य करता था। एक बार उद्बोधन गया था। उन्होंने मुझे एक मोटा संस्कृत शब्दकोश देकर कहा, 'तुम इसको मठ में ले जा पाओगे?' मैंने कहा, 'हाँ, महाराज, अवश्य ही ले जा सकूँगा।'

''ठाकुर के पार्षदों का सत्संग करके हमारा जीवन धन्य हो गया है। मठ में सम्मिलित होकर उद्यान में झाड़ू लगाया हूँ, कार्यालय में कार्य किया हूँ, अस्पताल में कार्य किया हूँ। ठाकुर के पार्षदों की सेवा करके बहुत आनन्द प्राप्त किया हूँ। उनलोगों का स्नेह-प्रेम कभी नहीं भुलाया जा सकता। **(क्रमश:)**

भूल सुधार

रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) के विज्ञापन में प्रकाशित अकाउन्ट संख्या 3885115151369 **भूल से प्रकाशित हो गई थी। सही संख्या है –** 38851151369

बिलासपुर आश्रम का फोन नं. 8240129728

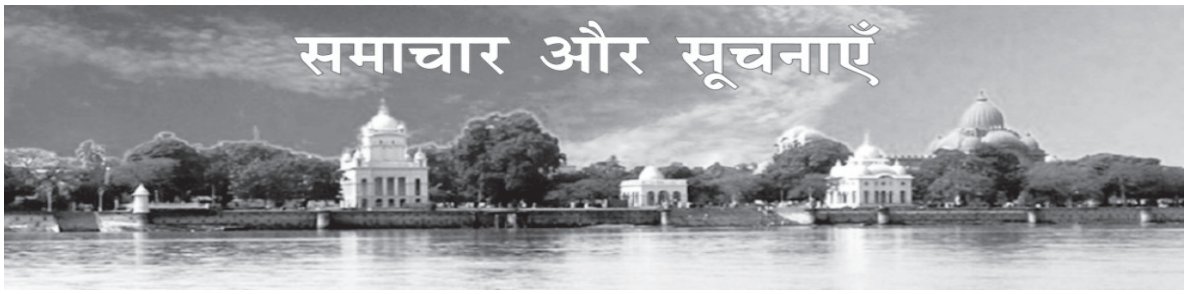

परम पूज्य रामकृष्ण मठ और मिशन के प्रेसिडेंट स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज द्वारा बागबाजार मठ में ६ मई, २०२२ पावन शंकराचार्य जयन्ती के अवसर पर बहुप्रयोगी भवन का शिलान्यास किया गया।

२८, मई २०२२ को **रामकृष्ण मठ, चेन्नई** द्वारा एक कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें तमिलनाडु के विभिन्न विद्यालयों एवं महाविद्यालयों से लगभग १०० प्रधानाध्यापक, शासकीय अधिकारी सम्मिलित हुए।

नये खिलौनों एवं क्रीड़ाओं को प्रोत्साहान देने हेतु भारत सरकार द्वारा आयोजित 'टोयकाथौन' प्रतियोगिता में रामकृष्ण मठ, चेन्नई की मीडिया टीम द्वारा विकसित 'नरेन्द्र स्मार्ट टॉय' को पुरस्कृत किया गया। कार्यक्रम का आयोजन २४-२६ मई के बीच नोएडा इन्स्टिट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एवं टेक्नोलॉजी, नोएडा में किया गया।

सिल्वर जोन फाउन्डेशन, नयी दिल्ली द्वारा अयोजित शैक्षणिक आया ऑलम्पियाड में **रामकृष्ण मिशन, हाटमुनीगुड़ा** विद्यालय के छात्रों ने भाग लिया एवं १२ स्वर्ण, ४ रजत एवं २ कास्य पदक प्राप्त किये।

४ मई, २०२२ को, **सेवा प्रतिष्ठान चिकित्सालय, कोलकाता** में नयी सीटी स्कैन मशीन स्थापित की गयी।

नैतिक शिक्षा एवं युवा कार्यक्रम

अप्रैल, २०२२ में **रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा** द्वारा सांस्कृतिक प्रतियोगितयों का आयोजन किया गया, जिसमें ३४ विद्यालयों एवं महाविद्यालयों से कुल ३००० विद्यार्थियों ने भाग लिया। विजेताओं को १७ मई को सरकारी इण्टर महाविद्यालय में पुरस्कृत किया गया। १५ मई, २०२२ को अलमोड़ा की एक विद्यालय में स्वामीजी पर एक संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें २००० विद्यार्थियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन बसावनगुड़ी, बैंगलोर द्वारा 'स्वामी विवेकानन्द एवं भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन' विषय पर १३ एवं १४ मई को संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें ४०० विद्यार्थियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, कूचबिहार द्वारा १५ मई, २०२२ को आयोजित युवा-सम्मेलन में १७८ युवाओं और शिक्षकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली द्वारा २८ अप्रैल से लेकर २४ मई, २०२२ तक नैतिक शिक्षा पर सात ऑनलाइन एवं एक ऑफलाइन कार्यशाला का आयोजन किया गया। भारत के विभिन्न भागों से कुल ३८३ प्रधानाध्यापकों एवं अध्यापकों ने इसमें भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, द्वारा २१ मई, २०२२ को व्यक्तित्व विकास कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें एक महिला महाविद्यालय से १०४ विद्यार्थियों एवं ६ व्याख्याताओं ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, नवद्वीप द्वारा ८ मई, २०२२ को युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें १०८ युवाओं ने भाग लिया।

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट द्वारा १९ जून, २०२२ को 'आजादी का अमृत महोत्सव' के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय युवा-शिविर का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन पाण्डुचेरी की पूर्व राज्यपाल डॉ. किरण वेदी ने की। युवाओं को विभिन्न सत्रों में डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, स्वामी शुद्धिदानन्द, स्वामी आत्मश्रद्धानन्द, डॉ. विक्रम सिंह, श्री शरद सागर और श्रीमती ज्योतिबेन थानकी ने सम्बोधित किया। आश्रम के सचिव स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने सबका स्वागत किया। कार्यक्रम में लगभग ५०० युवाओं ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम

स्वामी विवेकानन्द पथ, पो. बेला, मुजफ्फरपुर – 842002, बिहार

फोन : 0621-2272127, 2272963

ई-मेल : - <rkm.muzaffarpur@gmail.com>,

<muzaffarpur@rkmm.org>,<Website : www.rkmsmuzaffarpur.org>

निवेदन

प्रिय मित्रो !

प्रतिवर्ष जल भराव की समस्या के कारण आश्रम की गतिविधियाँ विशेष रूप से बाधित हो रही हैं । विगत दो वर्षों में विषम परिस्थितियों के कारण चिकित्सकीय एवं शैक्षणिक सेवाएँ नियमित नहीं चल सकीं एवं उन्हें बन्द करना पड़ा, जिससे आश्रम को विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा । आश्रम पाँच महीनों तक जल-मग्न रहा । चिकित्सकीय सेवाएँ पूर्ण रूप से बन्द करनी पड़ी । आश्रम के चिकित्सकीय कर्मियों को चिकित्सालय भवन में स्थानान्तरित करना पड़ा, कई लीची के पौधे सूख गये, आश्रम की चारदीवारी कई स्थानों से क्षतिग्रस्त हो गयी ।

अतः आपसे निम्नांकित कार्यों में सहयोग प्रदान करने का अनुरोध है ।

	आवश्यकताएँ	राशि
1.	मिट्टी भराई	05 लाख
2.	प्रांगण सड़क निर्माण	30 लाख
3.	चारदीवारी निर्माण	30 लाख
4.	सहायक चिकित्सा भवन का निर्माण	04 करोड़
5.	चिकित्सकीय उपकरण	60 लाख

खातेदार का नाम - रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर
बैंक का नाम - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया
खाता संख्या - 10877071752
IFSC कोड - SBIN0006016

आपके और आपके परिजनों के लिए प्रभु से प्रार्थना सहित

प्रभु सेवा में आपका
स्वामी भावात्मानन्द
(सचिव)